thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2015 TO 31.12.2017)

६३, १२ मार्च –2015

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

(सञ्चालक)

आदरी सह–सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर

होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द

चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल

होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला

पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882–223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882–224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. सविता सचदेवा	वेदों में सदाचार	लेख	2
डॉ. भवानीलाल भारतीय	ब्रिटिशकालीन राजस्थान में शिक्षा: कुछ सहपाठियों के संस्मरण	लेख	5
डॉ. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा	दान की महत्ता	लेख	9
डॉ. अजीत कुमार शास्त्री	होली समता एवं ममता का प्रतीक	लेख	11
डॉ. शारदा गुप्ता	वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा	लेख	14
डॉ. आदित्य आंगिरस	राजयोग: एक पुनर्व्याख्या	लेख	17
डॉ. रितू बाला	भाति में भारतम् में काव्यतत्त्व	लेख	19
डॉ. कुन्ती देवी	आधुनिक न्याय-व्यवस्था में अर्थशास्त्र की प्रासङ्गिकता	लेख	22
सुश्री अनु पुरी	संस्कृति सभ्यता के आईने से भारत का परिवेश	लेख	24
आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'	महान् वीरांगना दुर्गा भाभी	लेख	26
श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'	समर्थ को नहीं दोष	लघुकथा	29
कु. विदुषा	वाल्मीकिरामायण में भरतचरित्र	लेख	30
ठाकुर मनोहर लाल	स्वामी दयानन्द एक विद्वान् के रूप में	लेख	34
श्री अमृतलाल मालवीय	सर्वधर्म समभाव - सर्वजन हिताय	लेख	37
श्री गुलशन शर्मा	वेदोक्त आतंकवाद उन्मूलन के उपाय (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)	लेख	39
सुश्री प्रियंका विजय	बुद्धचरितम् महाकाव्य का काव्यसौन्दर्य	लेख	43
	संस्थान-समाचार		47
	विविध-समाचार		49
	पुण्य-पृष्ठ		50

thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६३ होश्यारपुर, फाल्गुन २०७१; मार्च २०१५ संख्या १२

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद्यशो
अदित्या यत्तन्वः संबभूव।
तत्सर्वे समदुर्मह्यमेतद्
विश्वे देवा अदितिः सजोषाः॥

(अथर्ववेद, 3. 22. 1)

(हस्तिवर्चसं) हस्ति-तेज (की) (बृहद्यशो) महाकीर्ति (सर्वत्र) (प्रथताम्) फैल रही है। यह साक्षात् (अदित्या) अदिति देवी की (संबभूव) उपज है। (विश्वे देवाः) सब देवता और अदिति देवी परस्पर मिले हुए (मह्यम्) मुझे यह (सजोषाः) महाबल (समदुः) प्रदान करें।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

thearyasamaj.org

वेदों में सदाचार

– डॉ. सविता सचदेवा

वेद भारतीय संस्कृति के आधार-स्तम्भ हैं। यह मानव-जाति के लिये अद्वितीय मार्गदर्शक एवं सर्वोत्कृष्ट आचार-संहिता हैं। मनुष्य को सफल एवं सुन्दर जीवन जीने की कला भी वेदों से ही मिलती है। वैदिक संस्कृति का मूल चारित्रिक श्रेष्ठता है, चारित्रिक श्रेष्ठता का आधार सदाचार है। सदाचार का अर्थ है- अच्छा आचरण अच्छा व्यवहार। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बनता है, मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही वह आचरण करता है। क्योंकि विचारों से ही आचरण बनता है, जिसे चरित्र कहते हैं, चरित्र ही विचारों का दूसरा नाम है। सद्व्यवहार को हम मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीन प्रकार से बाँट सकते हैं। वेदों में मन में शुद्ध संकल्प एवं पवित्र भावनाओं के उदय के लिये प्रार्थना करते हुये कहा गया है कि निपुण सारथी जैसे रास द्वारा घोड़ों को चलने के लिये बार-बार प्रेरित करता है और नियन्त्रित करता है वैसे ही मनुष्यों को अच्छे कार्यों में प्रेरित करने वाला मेरा जो मन है वह शुद्ध तथा पवित्र संकल्प वाला हो।[1] ऋग्वेद में भी भगवान् से मन को कल्याण-मार्ग पर चलने की प्रार्थना की गई है।[2] मन-नियन्त्रण से जीवन में संयम, मर्यादा आदि सद्गुणों की उत्पत्ति होती है। अथर्ववेद में भी सर्वकल्याण की भावना दर्शायी गई है।[3]

ज्ञानप्राप्ति के साधन आंख, कान, नाक, रसना और त्वचा प्रमुख हैं। वेद में इन सब इन्द्रियों को पवित्र रखने की ईश्वर से प्रार्थना की गई है।[4]

यदि मन को बुरे विचारों से हटाना है तो उसके स्थान पर अच्छे विचारों को स्थापित करना होगा यदि ऐसा न किया गया तो बुरे विचार मनुष्य पर हावी हो जायेंगे। इसीलिये वेद भक्त कहता है कि मुझे तो अवकाश ही नहीं कि मैं पाप का चिन्तन कर सकूं।[5] सुन्दर विचार मन में आने से स्वार्थ, दुराचार, लोभ, मद-मत्सर क्रोध आदि आसुरी-वृत्तियाँ उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार सुवर्ण का मैल अग्नि के सम्पर्क से जल कर भस्म हो जाता है।

सद्वृत्त में दूसरा मानवता का लक्षण वाक्-संयम है। वाणी की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता से ही व्यक्ति पहचाना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के तप गिनाये हैं- शारीरिक, वाचिक और मानसिक । उद्वेग न उत्पन्न करने वाला प्रिय हितकारक और सत्यवचन बोलना, स्वाध्याय वाणी का तप कहलाता है।[6] वाणी गुण हैं मधुर बोलना, प्रेमपूर्वक, सत्य और सोच समझ कर बोलना। वेदों में मधुर और हितकर वचनों की महत्ता को दर्शाया गया है। ऋग्वेद में कहा है जिस

1. यजु. - 3415
2. ऋ. 10/20.11
3. अथर्ववेद 1/31/45.
4. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः पश्येमाक्षभिः, यजु 25. 21
5. अथर्ववेद 6/15/1
6. गीता, 17/15.

thearyasamaj.org

प्रकार छलनी से छान कर सत्तू को साफ करते हैं वैसे ही जो लोग मन, बुद्धि अथवा ज्ञान की छलनी में छान कर वाणी का मधुर प्रयोग करते हैं वे हित की बातों को समझते हैं। जो लोग बुद्धि से शुद्ध कर वचन बोलते हैं वे अपने हित को भी तथा जिसको बात बता रहे हैं उसके हित को भी समझते हैं।[7]

मधुरता से कही गई बात हर प्रकार से कल्याणकारी होती है परन्तु वही बात अगर कठोर और कटु शब्दों से बोली जाये तो एक बड़े अनर्थ का कारण बन जाती है। मनु ने वाणी के कटुवचन, झूठ चुगली एवं असम्बद्ध प्रलाप चार दोषों को गिनाया है।[8] वेदों में कहा गया है कि मनुष्य को इन चार दोषों से सदैव दूर रहना चाहियें और मधुर वचन बोलने चाहियें। अथर्ववेद में कहा है मेरी जिह्वा के सिरे पर मधुर रस होवे, जिह्वा को मूल में मधुर रस होवे, मेरे कर्म और बुद्धि में ही अवश्य तूं रह, माधुर्य मेरे चित्त में पहुँचे।[9] मेरा आना-जाना मधुर हो, मैं सदा मीठी वाणी बोलू और मैं मधुर रूप वाला रहूँ।[10]

यजुर्वेद में भी वाणी को कामधेनु कहा है जो हमारी सारी इच्छाओं को पूर्ण करती है। वाणी ही भावों और विचारों को प्रकट करने का अद्वितीय साधन है और वाणी द्वारा ही भावों और विचारों का विसर्जन किया जाता है। वाणी विचार दान करने वाली है।[11] वाणी द्वारा मनुष्यों को मधुर और शालीन शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। सत्य-वाणी का आभूषण है सत्य-भाषण से ही समाज में मनुष्य का सम्मान बढ़ता है। यजुवेद में प्रजापति ब्रह्मा द्वारा सत्य को स्वीकारा गया है, सत्य मेंही श्रद्धा को स्थापित किया गया है।[12] तैत्तिरीयोपनिषद् में सत्य बोलने पर बल दिया है।[13] असत्य से सत्य की ओर चलना चाहिये। सत्य अर्थात् जो सदा है, सतत है, निरन्तर है।

वाणी के संयम के पश्चात् शरीर का स्थान है। शरीर का तप है सत्य का आचरण। अहिंसा, अद्वेष, शारीरिक श्रम, दूसरों की सेवा करना, चोरी न करना। वेदों में केवल मानव का मानव के प्रति सद्व्यवहार या आचरण का ही उपदेश नहीं है; अपितु प्राणी के प्रति प्रेमपूर्वक एवं अहिंसक व्यवहार का उपदेश भी है। वैदिक संस्कृति सदाचार को जितना महत्त्व देती है उतना अन्य उपादनों को नहीं। वेद का कथन है कि दुराचारी व्यक्ति ऋत के मार्ग को पार नहीं कर सकता। देवयान मार्ग सदाचारी व्यक्ति के लिये है। अत एव साधक प्रार्थना करता है। हे अग्रे! मुझे दुश्चरित से पृथक् करो और सब ओर से सदाचार का भागी बनाओ।[14]

अथर्ववेद में सद्व्यवहार को सत्याश्रित कहा गया है। सत्य में ही तप का वास है, सत्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जो बाहर से प्राप्त हो। सत्य एक प्रतीति है अनुभूति है जो आचरण के माध्यम से स्वयं में जागृत की जा सकती है। अत: सत्य ही भूमि का आधार है। भूमिसूक्त में भी पृथ्वी को धारण करने वाले पदार्थों में सर्वप्रथम सत्य का ही

---

7. ऋग्वेद, 10/71/12
8. मनुस्मृति,12/6
9. जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधुलकम्।
10. अथर्व. 1/34/2
11. यजु. 1/15
12. वही, 19/77
13. तैत्तिरियोपनिषद्, 1/11
14. यजु. 4/28

thearyasamaj.org

परिगणन किया गया है।[15]

सत्य का अन्वेषक ही अहिंसा का प्रेमी होता है। वेद ने जहां मनुष्य समाज को अहिंसापूर्वक रहने की प्रेरणा दी है वहां तीन परिस्थितियों में हिंसा का विधान भी किया है। वह है बाह्य आक्रमण, असमाजिक तत्वों का दमन और भयंकर विषैले जन्तुओं का नाश। अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है, कि हे इन्द्र हमारे बाह्य शत्रुओं को मार डाल और सेना लेकर चढ़ाई करने वालों को नीचे रोक दे[16] और जो लाभदायक जीव जन्तु हैं वेद उन्हें पालने की शिक्षा देता है। मन से किसी का अहित चिन्तन न करना, वाणी से किसी को दु:खी न करना और शरीर से किसी को पीड़ा न पहुँचाना यही अहिंसा कहलाती है। वेद ने कहा है कि हम दानी, अहिंसक और ज्ञानी व्यक्ति का संग करें।[17]

अहिंसा के साथ-साथ वेद ने यह भी कहा है कि मनुष्य के मन में द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिये। अथर्ववेद में कहा है कि सभी एक मन से रहें परस्पर द्वेष न करें। एक दूसरे से ऐसे प्रेम करें जैसे नवप्रसूता गाय अपने बछडे से दुलार करती है।[18]

वेद ने ईश्वर को पिता धरती को माता और धरती के सारे मनुष्यों को एक परिवार मान कर सबको प्रेमपूर्वक रहने ही प्रेरणा दी है। प्रेम ईश्वर से समन्वय करवाता है। प्रेम एक ऐसी अग्नि है जिससे ईर्ष्या, घृणा और वैमनस्य सब जल कर राख हो जाते हैं। प्रेम का प्रथम रूप ईश्वर-प्रेम के रूप में हमारे सम्मुख आता है। वेद ने कहा है कि हम ईश्वर से प्रेम करें।[19] और सबसे मित्रता का भाव रखें। अथर्ववेद में कहा है कि आपसी सहयोग, प्रेम और मधुर शब्दों के साथ लोगों से व्यवहार करने वाला व्यक्ति ही भ्रातृत्व-प्रेम को स्थापित कर सकता है।

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। चोरी की भावना मनुष्य के बहुत बड़े पतन का कारण होती है। चोरी मनुष्य तभी करता है जब वह परिश्रम किये बगैर पदार्थों की प्राप्ति की लालसा करता है या वह बेरोजगार हो और उसकी इच्छा की पूर्ति न हो। ऋग्वेद में इस बात पर बल दिया है कि मनुष्य को परिश्रम करना चाहिये और चोरों को दण्ड दें तथा शिक्षा दें और उनमें से चोरी की भावना दूर करनी चाहिये[20] वेद में आदेश दिया गया है कि मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिये दूसरों की कमाई खाना ऋणी होना है-

'स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा ते अन्येन न सन्नशे।[21]

योगीराज पतञ्जलि ने भी कहा है- अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सब रत्न अर्थात् उत्तम से उत्तम पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।[22]

अत: वेद ईश्वर की वह वाणी है जिसके बताये गये मार्ग पर चलकर हम आत्मोन्नति के पथ पर चल सकते हैं और अपना जीवन सफल कर सकते हैं।

—सरकारी कालेज स्त्रियाँ, अमृतसर।

15. अर्थ. 12/1/28 16. वही, 1/21/2 17. ऋ. 5/51/15 18. अथर्व. 3/30/1
19. ऋ. 2/12/15 20. वही, 1/42/3 21. यजु., 23/15 22. योग., 2/37

thearyasamaj.org

ब्रिटिशकालीन राजस्थान में शिक्षाः कुछ सहपाठियों के संस्मरण

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

अतीत की स्मृतियां भी कितनी सुहावनी एवं लुभावनी होती हैं। जी चाहता है पंख लगा कर पुनः बचपन के उसी ज़माने में पहुँच जायें, किन्तु विगत को पुनः प्राप्त करना शक्य नहीं होता। छात्रावस्था का आकर्षण तो कुछ और ही होता है जब सांसारिक दायित्वों से मुक्त किशोर अथवा युवा कल्पना के विशाल गगन में उन्मुक्त विचरण करता है। मैंने जब कालेज में प्रवेश किया तब भारत को आज़ादी मिलने में दो वर्ष शेष थे। जोधपुर के जसवन्त कालेज को स्थापित हुए पचास वर्ष १९४६ में पूरें हो रहे थे। इस स्वर्ण जयन्ती को मनाने की तैयारियां हो रही थीं। भूतपूर्व छात्रों ने इस आयोजन में शिरकत करने के लिए अपना पृथक् संगठन बनाया था, जिसमें राज्य के उच्च सरकारी अधिकारी, वकील आदि थे। जसवन्तराज मेहता, वहीदुल्ला खां आदि सब राजपत्रित अफसर थे।

स्वर्णजयन्ती का मुख्य समारोह १९४६ में सम्पन्न हुआ। मुख्य अतिथि खुद मरुधराधीश महाराजा सर उम्मेदसिंह तथा युवराज महाराजकुमार हनवन्तसिंह थे। रियासत के अंग्रेज प्रधानमंत्री सर डोनाल्ड फील्ड तो युग की धड़कन को सुन कर पहले ही रुखसत ले चुके थे और कश्मीरी पण्डित दीवानबहादुर धर्मनारायण काक उपमुख्यमंत्री थे। शिक्षा के निदेशक अभी मि.ए.पी काक्स थे जो मूलतः न्यूजीलैण्ड के निवासी थे और १९२८ में ही राज्य की शिक्षासेवा में आ चुके थे। जयन्ती उत्सव में वे सभी कार्यक्रम हुए जो ऐसे समारोहों में अक्सर होते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम, वादविवाद प्रतियोगिता, यू.एन.ओ. की नकल पर एक छद्म बैठक (मॉक ट्रायल), प्रीतिभोज, प्रदर्शनी आदि के साथ-साथ बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के लिखे नाटक 'शाहजहां' का मञ्चन किया गया। इसमें भाग लिया था श्री खेतसिंह राठौड़ तथा परसराम मदेरणा ने जो कालान्तर में इस राज्य की राजनीति के शिखर पुरुष रहे। ये हमारे वरिष्ठ साथी थे।

हमारे प्रिंसिपल पी.पी. शहानी यों तो सदा सूट-बूट से लैस रहते, किन्तु गांधीजयन्ती (2 अक्टूबर) को जब कालेज आते तो उनके सिर पर सोला हैट की जगह सफेद गांधीटोपी सुशोभित होती थी। गांधीजयन्ती मनाने की शासन की ओर से मनाही थी। अंग्रेजों के चाटुकार राजाओं को गांधी जी कब पसन्द आते, किन्तु शहानी जी अंग्रेज शिक्षा-निदेशक (कॉक्स) के आदेश की स्पष्ट अवहेलना कर गांधीजयन्ती का कालेज में आयोजन करते। 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' का भजन गाया जाता, रामधुन भी होती तथा गांधी जी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर व्याख्यान होते। कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् नियमित पढ़ाई

thearyasamaj.org

होती।

उस युग के छात्र राजनैतिक चेतना सम्पन्न तो थे ही, किन्तु उनमें उग्रता, आक्रामकता तथा वैसी हिंसावृत्ति लक्षित नहीं होती थी जो आज के छात्रों में दिखाई देती है। रैंगिग का तो नाम भी अज्ञात था। नव-प्रविष्ट छात्रों से छोटे भाईयों की भांति व्यवहार होता था तथा उन्हें पग-पग पर वरिष्ठ छात्रों का मार्गदर्शन मिलता था। छात्रों का राजनीति के प्रति रुझान साफ दिखाई पड़ता था। विनायक दामोदर सावरकर के नेतृत्व के प्रति छात्रों में कोई रुचि दिखाई नहीं देती थी यद्यपि देश विभाजन की आहट स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच की तनातनी उभार पर थी, किन्तु समाजवादी दल तथा उसकी विचारधारा के प्रति भी लड़कों का तीव्र आकर्षण था। साम्यवाद से थोड़ा मतभेद रख कर एक बंगाली चिन्तक मानवेन्द्रनाथ रॉय (एम.एन. रॉय) ने रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी का गठन किया था और हमारे कालेज के छात्रों का इस पार्टी में प्रबल आकर्षण था। मेरे से वरिष्ठ अनेक छात्र रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी में आस्था रखते थे। सर्वश्री चांदमल शर्मा (कालान्तर में राजस्थान विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक), डॉ. हरिकृष्ण पुरोहित (मेरे पाली के सहकर्मी तथा बाद में राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रवक्ता), रामचन्द्र बोड़ा (बी.ए. में मेरे सहपाठी) इण्टर में मेरा सहपाठी रतनलाल बिस्सा, ये सभी रायवादी थे। कांग्रेस के प्रति भी छात्रों का सामान्य रुझान था। किन्तु छात्र-राजनीति की एक धुरी कम्युनिस्ट प्रभावित स्टूडैन्ट फैडरेशन ऑफ इण्डिया थी। हमारी कक्षा का छात्र सैयद मोहम्मद अहमद मुस्लिम स्टूडेन्टस यूनियन का मंत्री था।

मेरे से वरिष्ठ हुकमराज मेहता (मूलतः उदयपुर निवासी) तथा अमृत नाहटा (कालान्तर में संसद सदस्य तथा फिल्म 'किस्सा कुर्सी का' के निर्माता-निदेशक) साम्यवाद के मुखर प्रचारक तथा पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। व्याख्यान कला में निपुण इनके व्याख्यान छात्रों को प्रभावित करते थे। स्मरण होता है- १९४५ की किसी तिथि को पं. जवाहरलाल नेहरू का जोधपुर आगमन। इन्दिरा गांधी और शेख अब्दुल्ला उनके साथ थे। देश में जो राजनीतिक बदलाव आने वाला था उसे भांप कर दूरदर्शी महाराजा उम्मेदसिंह ने पण्डित जी व उनके साथियों को अपने निवास के राजप्रासाद उम्मेद भवन पैलेस (अब पांच सितारा होटल) में ठहराया। सायं साधारण सभा तो हुई किन्तु दोपहर को पं. नेहरू ने तत्कालीन दरबार हाई स्कूल के मैदान में छात्र-समुदाय को सम्बोधित किया। यहां सभा के संयोजक अमृत नाहटा (प्रखर साम्यवादी) उपस्थित थे। उसकी किसी बात पर नाराज़ होकर पण्डित जी ने उस पर मसनद फेंकी। पण्डितजी की ऐसी उग्रता सभाओं में प्रायः दिखाई देती थी। तथापि उनका हृदय नवनीत के तुल्य था।

१९४२ की क्रान्ति में भी हमारे शहर के कुछ युवाओं ने भाग लिया था। जोरावरमल बोड़ा तथा श्यामसुन्दर व्यास (प्रसिद्ध पत्रकार, 'लोक जीवन' के सम्पादक, हाल में दिवंगत, बी.ए. में मेरे सहाध्यायी) ने स्टेडियम सिनेमा हाल में बम फेंका और जेल की सजा पाई। कारागार वास से मुक्त होकर बड़ी आयु मे कालेज में भर्ती हुए और

thearyasamaj.org

आयु में कनिष्ठ हम जैसे छात्रों के साथी रहे। राजनीति में रुचि लेने वाले इन छात्रों में एक प्रवृत्ति और देखी गई। ये गज़ब के अध्ययनशील (पढ़ाकू) थे। पाठ्यक्रम के अलावा राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि की देशी-विदेशी धाराओं पर इनकी गहरी पकड़ दिखाई देती थी। ऐसे प्रबुद्ध छात्रों में रामचन्द्र बोड़ा तथा स्व. हरमलसिंह के नाम याद आते हैं। बोड़ा जी से तो यदा-कदा मुलाकात या टेलिफोन पर बातें होती रहीं। हरमलसिंह ने जयपुर के दैनिक पत्र राजस्थान पत्रिका में काम किया और लगभग १८-१९ वर्ष पूर्व उनका निधन हुआ। हरमलसिंह की कालेज वाली छवि का ध्यान आता है। लम्बा कद, सांवला रंग, गम्भीरता लिए व्यक्तित्व, कुर्ता-पाजामा का सादा लिबास (जब कि छात्र प्रायः पतलून पहनते थे), सदा चिन्तन की मुद्रा में। ये चिन्तनशील छात्र हमें कुछ अनोखे से लगते।

कांग्रेस की विचारधारा से प्रभावित छात्रों का नाम लूं तो लोकनायक जयनारायण व्यास (राजस्थान के मुख्य मंत्री रहे) के पुत्र देवनारायण व्यास (भाया) का नाम स्मृति में आता है। प्रिंसिपल शहानी ने अवकाश ग्रहण किया। १९४७ का जमाना था। जोधपुर राज्य में भी उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई और जयनारायण व्यास मुख्यमंत्री बने। शहानी जी को विदाई दी गई मण्डोर के प्रसिद्ध उद्यान में प्रीतिभोज देकर। कालेज के सभी छात्रों को मण्डोर के स्टेशन तक पहुँचाने के लिए स्पेशल ट्रेन चलाई गई। रेल की पटरी के समानान्तर सड़क पर देवनारायण 'भाया' अपनी जीप में अपने साथियों के साथ चल रहे थे और ट्रेन में बैठे छात्रों का अभिनन्दन कर रहे थे। प्रखर गांधीवादी अमृतलाल गेहलोत ने पढ़ाई के बाद राजनीति को अपनाया और एम.एल.ए. बने। वे विज्ञान के विद्यार्थी थे और कालेज में भी खादी की धोती, कुर्ता तथा गांधी टोपी धारण किये आते थे।

उन दिनों छात्र-संघों की कोई राजनीति नहीं थी और न किसी राजनैतिक पार्टी का छात्र-संगठनों से सीधा सम्पर्क। तथापि जब यूनियनों के गठन का आरम्भ हुआ तो दो तीन छात्र नेता उभरे। इनमें श्री अनूपसिंह निर्दली जैसे थे तो देवराज बोहरा आर.एस.एस. से सम्बद्ध। विज्ञान के प्रतिभाशाली छात्र जी. के. मेनन (कालान्तर में भारत के प्रधानमंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक) हमारी रियासत के मि. मेनन (वित्तमंत्री) के पुत्र थे। वे भी छात्रनेताओं में सम्मानास्पद स्थान रखते थे। वर्षों बाद उनसे पंजाब विश्वविद्यालय के एक दीक्षान्त समारोह में भेंट हुई जब वे इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि तथा दीक्षान्त भाषण देने हेतु आये थे। मैं दयानन्द शोध पीठ के अध्यक्ष के नाते जब प्रोफेसर गैलरी में उनसे भेंट करने गया तो मैंने उन्हें जसवन्त कालेज में उनके छात्रकाल की याद दिलाई। वे भी पचास साल पुरानी यादों में खो गये जो स्वाभाविक ही था। पुराने जूनियर से मिल कर उन्हें खुशी हुई।

स्पष्ट कर दूं कि राष्ट्रीय-स्वयं सेवक-संघ की विचारधारा से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। ध्वजपूजा (एक प्रकार की मूर्तिपूजा), गुरुडम (सर्वोच्च संचालक का एक तंत्री प्रभाव), प्रजातंत्र

thearyasamaj.org

का अभाव तथा संकीर्ण साम्प्रदायिक कट्टरता ने मुझे इस संस्था से जुड़ने से बचाये रखा। यों इस संस्था से जुड़े प्रतिभाशाली सहपाठी लक्ष्मीनारायण पुरोहित तथा कालान्तर में राजस्थान जनसंघ के अध्यक्ष रहे गुमानमल लोढ़ा से मेरा सौहार्दभाव सदा रहा। लोढ़ा जी ने आपातकाल में सरकार से माफी मांग ली और अजमेर के केन्द्रीय कारागार से मुक्त हो गये। पुरस्कार स्वरूप उन्हें राजस्थान हाईकोर्ट की जजी मिली और वे गौहाटी हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश रहे। चण्डीगढ़ तथा पाली के निकटवर्ती एक आश्रम में उनसे भेंट हुई तो उन्होंने प्रेमपूर्वक पुराने दिनों का स्मरण दिलाया। विगत दिनों में वे गोसेवा और गोसंरक्षण के कार्य में लग गये थे।

मेरे सहपाठियों में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा रखने वाले छात्र थोड़े ही थे। भोपालसिंह भाटी ने आज़ादी प्राप्त होने के पश्चात् एक या दो बार विधानसभा का चुनाव अपने क्षेत्र जैसलमेर से लड़ा और विजयी रहे। रघुनाथ विश्नोई ने कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ा। शिवचरण माथुर के मंत्रिमण्डल में वे स्वास्थ्य मंत्री रहे। ये दोनों अब दिवंगत हो चुके हैं।

यदि मैं अपने साहित्यप्रेमी या साहित्यकर्मी साथियों की चर्चा न करू तो यह उनके साथ अन्याय होगा। लोकसाहित्य के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध कथाकार विजयदान देथा (जिनकी एक कहानी पर 'पहेली' फिल्म बनी) मेरे सहपाठी तथा अन्तरंग रहे। छात्रकाल में भी वे नटखटपन से छुटकारा पाने में सफल नहीं हुए थे। यह उनकी रंगीनमिजाजी ही थी कि दूसरे या तीसरे वर्ष कला में पढ़ते समय अपनी एक सहपाठिनी को लक्ष्य में रखकर उन्होंने 'मिस मूली', उपन्यास लिखा जो कभी नहीं छपा। बी.ए. करते-करते उनका काव्य-संग्रह 'ऊषा' प्रकाशित हुआ जिसमें छायावादी रंग की कविताएं थीं। गत वर्ष जब इसका नया संस्करण निकला तो विजयदान के आग्रह पर मैंने इसकी विस्तृत भूमिका लिखी। केन्द्रीय साहित्य-अकादमी से विशिष्ट सम्मान प्राप्त देथा जाने माने लेखक हैं।

कवि के नाते हमारे सहपाठी सत्यप्रकाश जोशी को ख्याति मिली। छात्रकाल में ही वे अपने प्रभावशाली काव्यपाठ के कारण कवि-सम्मेलनों के मंचों पर अपना स्थान बना चुके थे। वर्षा का नववधू के रूप में रूपकात्मक वर्णन करने वाली उनकी कविता ने असाधारण लोकप्रियता अर्जित की थी। राजस्थानी में भी काव्यरचना करते थे। ये बातें साठ वर्ष पुरानी हैं। अब न वैसे अध्यापक रहे और न छात्र। तभी तो मेरे दर्शनशास्त्र के अध्यापक डॉ. रामानन्द तिवारी पर लिखे मेरे एक श्रद्धापूत संस्मरण को पढ़ कर दक्षिण की हिन्दी-विदुषी श्रीमती कमलारत्नम् ने अपने लेख में लिखा- ''अब न तिवारी जैसे गुरु रहे और न भारतीय जी जैसे छात्र।''

-3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर।

thearyasamaj.org

दान की महत्ता

–डॉ. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

आचार्य विश्वबन्धु जी के अनुसार, ''वास्तविक दान की भावना का प्रारम्भ तभी कहा जा सकता है जब उस धर्म का साधक ऐसे लोगों की सहायता करने के लिए अग्रसर होता है, जिनके साथ उसका पहले से कोई पारिवारिक या किसी अन्य विशेष प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता, एवं जिन के बारे में उसे पता होता है कि वे प्रत्युपकार करने में समर्थ नहीं हैं।''

इस कथन का भाव है कि जब समाज में समर्थ लोगों द्वारा निष्पक्ष भाव से जरूरतमन्द और असमर्थ लोगों की सहायता की जाती है तो समाज में निर्धनता एवं अन्य अनेक प्रकार के दु:खों का इलाज होना आंरभ हो जाता है। ऐसे लोग जब इस सद्भावना का उचित रूप में और अपने कर्त्तव्य रूप में प्रयोग करने लग जाते हैं, तो उनके अन्त:करण पवित्र हो जाते हैं। व्यक्ति की यही सद्भावना समाज में मधुरता का रस भर देती है। ऐसे साधक जितना-जितना धनार्जन करते रहते हैं, उसे उतना-उतना ही अधिक से अधिक लोगों के दु:खों को दूर करने में लगाते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति दिन पर दिन निरभिमानी और विनम्र होते जाते हैं। दिखावा किए विंना दानधर्मी की भावना व्यक्ति में अहंकार की भावना को नष्ट कर देती है, और ऐसे साधक का मानवमात्र के साथ सीधा सम्बन्ध जुड़ जाता है। पर, दान व्यक्ति को सर्वदा पात्र को ही देना चाहिए,अपात्र को नहीं। दान लेने वाले व्यक्ति को भी सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसे दान की आवश्यकता है भी कि नहीं। केवल मौज उड़ाने के लिए दान का ग्रहण करना उचित नहीं है। ऐसे व्यक्ति जो शारीरिक अथवा दूसरे किसी प्रकार की अपनी बेबसी के कारण, अपना निर्वाह चला सकने में असमर्थ हों केवल उन्हीं लोगों को दान स्वीकार करना चाहिए।

पात्र-अपात्र का विचार किए बिना दिया गया दान, दाता और दान ग्रहण करने वाले व्यक्ति, दोनों पर विपरीत प्रभाव डालने वाला होता है। ऐसी स्थिति में दाता अपनी कमाई का उचित उपयोग नहीं कर पाता और दूसरी ओर अपात्र के रूप में दान ग्रहण करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार के दुष्कर्मों के लिए उत्तरदायी बन जाता है। बिना परिश्रम के आसानी से प्राप्त होने वाला धन अनेक अपराधों की जड़ बन जाता है। अत: दाता को भी बहुत विचार करके सही पात्र को ही दान देना चाहिए। दूसरी ओर दान लेने वाले को भी बहुत सोच समझकर ही, अपनी असमर्थता के कारण ही दान ग्रहण करना चाहिए। बिना उचित कारण के दान ग्रहण करने से व्यक्ति की आत्मा का पतन हो जाता है और वह कोई भी कार्य करने के योग्य नहीं रह जाता। समाज में व्यक्ति को यथाशक्ति

thearyasamaj.org

सार्वजनिक कल्याणकारी सामाजिक संस्थाओं की भी दान द्वारा सहायता करते रहना चाहिए। ये जन-कल्याणकारी संस्थाएँ चाहे धार्मिक हों या शैक्षणिक हों या स्वास्थ्य सम्बन्धी हों अथवा किसी भी प्रकार से लोगों का कल्याण करने वाली हों, उनकी सहायता अपने सामर्थ्य अनुसार अवश्य ही व्यक्ति को करनी चाहिए। इस कार्य के लिए व्यक्ति को किसी द्वारा प्रेरणा प्राप्त करने का इन्तजार नहीं करना चाहिए। इस कार्य को करने के लिए उसे अपने आप ही सचेत रहना चाहिए।

प्रत्येक मानव को व्यक्तिगत स्तर पर किसी न किसी सामाजिक हितकारी संस्था में अपना योग देते ही रहना चाहिए। उसे सदा ऐसी कल्याणकारी संस्थाओं को ढूँढते रहना चाहिए, जिनके द्वारा वह उक्त सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी ओर से कुछ न कुछ योगदान देता रहे। उदारता से दान देने वाले व्यक्ति की मानसिकता में भी स्वत: ही उदारता की भावना का विकास हो जाता है। उसके स्वभाव में से अहंकार, क्रूरता, लोभ आदि की भावना का लोप हो जाता है। वह किसी भी व्यक्ति के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं करता, जिससे कि उसे किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचे। उसे सभी व्यक्ति अपने ही समान लगने लग जाते हैं। संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिससे किसी न किसी प्रकार की कोई गलती न हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति गलती का पुतला है। ऐसी उदारता वाली मानसिकता रखने वाला व्यक्ति किसी दूसरे द्वारा उसके प्रति कोई त्रुटि होने पर उसके प्रति कोई हिंसा वाली वृत्ति नहीं रखता, बल्कि वह उसकी त्रुटि को बहुत ही प्रेम से सुधारने का यत्न करता है। जब समाज में उदार सज्जनों द्वारा समाज के सभी व्यक्तियों से प्रेमभाव एवं सद्भाव वाला व्यवहार किया जाएगा तथा सभी के दु:ख-सुख को अपना ही सुख-दु:ख समझा जाएगा और सभी से एक समान व्यवहार किया जाएगा तो निश्चित ही समाज में सुख एवं शान्ति का वातावरण पनपता रहेगा। यदि समाज में लोग सन्तुष्ट होंगे तो सामाजिक वातावरण भी दिव्य हो जाएगा।

–साधु आश्रम, होशियारपुर।

सन्दर्भग्रन्थ - आचार्य विश्वबन्धु - सत्संगसार - (साभार) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होश्यारपुर-1971

thearyasamaj.org

होली समता एवं ममता का प्रतीक

–डॉ. अजीत कुमार शास्त्री

होली समता का प्रतीक–

भारत में जितने भी त्योहार और पर्व मनाए जाते हैं, उनका सीधा संबन्ध संस्कृति से, मूल्यों से और मानवीयता से है। पर्वों, त्योहारों, बहारों, नज़ारों का उद्देश्य जनमानस को हर्षित करके तरंगित करना है। जहाँ तक होली का सवाल है– यह यज्ञीय पर्व है। नई फसल पकने लगती है, उसके हर्षोल्लास में सामूहिक यज्ञ के रूप में होली में नवीन अन्न का यज्ञ करके उसके बाद उसे उपयोग में लाने का क्रम बनाया गया है। हमारा देश कृषिप्रधान देश है। कृषिप्रधान देश की यज्ञीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल यह परिपाटी बनाई गई है।

सच्चे और आदर्शवादी प्रह्लाद के दमन के लिए हिरण्यकश्यप के छल–प्रपंच जब सफल न हो सके, उसे भस्म करनें के प्रयास में होलिका जल मरी और प्रह्लाद तप कर कंचन बन गए। खीझ और क्रोधाग्नि से उन्मुक्त जब हिरण्यकश्यप उसे मारने दौड़ा तो नृसिंह भगवान् ने प्रकट होकर उसे समाप्त कर दिया। इस कथा की महान् प्रेरणाओं को होली पर्व के अवसर पर प्रतिवर्ष याद किया जाता है।

वैदिक–परम्परा में वर्गभेद का कहीं चिह्न तक नहीं मिलता। वेदों में ऐसी सशक्त चेतनाएँ विद्यमान हैं, जिनको आत्मसात् कर हम साधारण मानव से महामानव बन सकते हैं। वहाँ किसी से भेदभाव की, नफरत की या फिर विद्वेष की लेशमात्र भी भावना नज़र नहीं आती। समुद्र–सी विशालता, आकाश–सी व्यापकता, सूर्य–सी उदारता का चोला ओढे वेदभगवान् अपने एक–एक वाक्य द्वारा मानव के मंगल की बात कहता है। भारतीय संस्कृति की विविधता की यही विशेषता है कि यहां हर पर्व मनुष्य को महामनुष्य बनाता है। यहां हर पर्व जीवन जीना सिखाता है। यहां हर पर्व जीवन में लौ जगाता है। भेद–भाव मीटाता है। मिल–बैठ खुशियाँ मनाना सीखाता है। लिखने का तात्पर्य यह है कि भारत में जितने भी पर्व मनाए जाते हैं, वे सभी राष्ट्रीय चेतना के जागरण के पर्व हैं। परन्तु जहाँ–जहाँ वर्गभेद है, वहां समस्त साधन होते हुए भी क्लेश और दरिद्रता व्याप्त रहती है। जहाँ बन्धुत्व की भावना है वहाँ अल्प साधनों के रहते भी प्रसन्नता, व्यापकता, समता और श्रीविजय निवास करती है। होली का पर्व समता का पर्व है। यह ममता का पर्व है। प्यार की बौछारों का पर्व है। यह बहारों तथा नजारों का पर्व है। यह अपने परायों का पर्व है। यह रूठों को मनाने का पर्व है।

यहाँ एक दूसरों को कोई हीन न माने एतदर्थ

thearyasamaj.org

होली हमें समता, ममता अर्थात् आपसी प्रेम-प्यार का संदेश सुनाती है। समता और ममता के इस उद्देश्य को चरितार्थ करने के लिए हम मनुष्यों को पशु-पक्षियों से निरीह चींटियों से शिक्षा लेनी चाहिए कि, कितनी शालीनता, कितनी सभ्यता, कितने अनुशासनपूर्वक वे अपना जीवन बिताते हैं। हमारा जीवन खुशियों से ओत:प्रोत हो, कोई भी मानव यहाँ अप्रसन्न न दिखाई दे। सब के दिल में एक दूसरे के प्रति प्रेम दया, करुणा, सहायता, सहयोग की भावना पनपे। एतदर्थ होली के सामूहिक आयोजन का अपना विशेष उद्देश्य और महत्व है। होली के शुभावसर पर प्रत्येक स्त्री-पुरुष भावनापूर्वक इसके लिए प्रयत्नरत होते हैं। बड़े आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से इसको मनाया जाता है। घर में कई किस्म के पकवान बनाए जाते हैं। रंगों से होली खेली जाती है। घर-घर जाकर होली खेलकर अपनों को तोहफे तथा मिष्ठान्न भेंट किए जाते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर खेली जाने वाली होली का नज़ारा देखते ही बनता है।

जहाँ आज सामज में नाना विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। उसी प्रकार पर्व-त्योहारों के स्वरूप में भी भारी अंतर आया है। व्यक्ति उनके मूल उद्देश्य और वास्तविक नियमों को भूल कर उदण्डता की राह पर अग्रसर है। होली पर्व पर जो कुरीतियाँ पनप गई हैं, उन्हें निरस्त करने में भी सामूहिक आयोजनों की बड़ी भूमिका रहती है। पर्व-त्योहारों का उत्साह, उमंग, तरंग वैसी की वैसी बनी रहे, थोड़ा मोड़ देकर प्रकृति में विकृति पैदा करने वालों को, संस्कृति में कुसंस्कार पैदा करने वालों को शुभ की चेतना से चेतित किया जाना चाहिए ताकि वातावरण में से शुभ और सर्वथा मंगल की ही सुगन्ध आए।

समानता के भाव को अपनाते हुए, समानता के उस उद्देश्य को चरितार्थ करते हुए अपने वातावरण का भी ध्यान रखें। अपने निजी स्थानों, गाँव, वार्डों, मोहल्लों की गन्दी गलियों की साफ-सफाई, बौलियों, तालाबों, कुओं आदि की स्वच्छता भी सामूहिक रूप से करनी चाहिए। होली पर्व मनाने के लिए स्थानीय साधनों के अनुरूप योजना बनानी चाहिए। किसी सार्वजनिक स्थान पर एकत्रित होकर होलिका-दहन के शुभावसर पर सामूहिक प्रार्थना में शामिल होना शान्ति और समृद्धि का प्रतीक है। होलिका-दहन वाले दिन टोली बना कर निकलें, घर-घर से अश्लील चित्रों को लेकर जला दें। लोगों को शुभता की ओर प्रेरित करें। नशीली वस्तुओं के प्रति लोगों में चेतना जगाएँ। बुराईयों से दूर रहने और सत्य, परोपकार, दया आदि गुणों को अपनाने की अपील करते हुए होलिकादहन करें कि, हम अपनी जिन्दगी में केवल मंगलकारी शुभ आदतों को ही ग्रहण करेंगे। सत्पथ का अनुसरण करते हुए सदा मानवता के कल्याण की, राष्ट्र के उत्थान की बात सोचेंगे। इन्हीं संकल्पों के साथ होलिकोत्सव मनाने से हम में सामूहिकता की भावना, एकता की भावना, प्रेम-प्यार तथा समता और उदारता की भावना पनपती है।

होली पर जब आप रंगों का प्रयोग करते हों

thearyasamaj.org

तो इस अवसर पर प्राकृतिक रंगों से ही होली खेलना अच्छा रहेगा क्योंकि कृत्रिम रंगों में न जाने बहुत सारी चीजों की मिलावट होती है जोकि शरीर के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। इसके लिए केसु (टेसू) के फूल रात को भिगो कर रंग तैयार कर लेना चाहिए। सबको अपने साथ ऐसे ही कुदरती रंगों को लेकर किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर प्रेमपूर्वक होली का रंग खेलना चाहिए। केसू के फूलों का रंग विशेषत: स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है। मस्तक पर गुलाल, चन्दन रोली आदि का तिलक करना चाहिए।

इस प्रकार होली का पर्व मनाने से सभी में सामूहिकता की भावना का संचार होगा। वर्तमान में जो त्योहारों, पर्वों के नाम पर बीभत्स, कुत्सित कुरीतियाँ पनपी हैं, उनका नाश होगा। हर पर्व का सम्बन्ध मौसम से है जो पर्व जिस मौसम में आता है उस पर्व को शालीनता, सभ्यता और प्राकृतिक तौर-तरीकों के साथ अगर मनाया जाए तो अनेक बीमारियों से रक्षा होगी। बुराईयाँ दूर भागेगीं। स्वास्थ्य तथा सद्भावना की वृद्धि होगी। पारस्परिक राग, द्वेष, ऊँच-नीच की निकृष्ट भावना का नाश होगा। आपसी स्नेह में वृद्धि होगी। नर-नारियों में सद्भावना का विकास होगा। इस अवसर पर हम सबको भेद-भाव को भूलकर अपना सामाजिक स्तर वैदिक आदर्श के अनुकूल बनाकर एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। इससे जीवन में नवीनता का, सजीवता का तथा समग्रोत्कर्ष का भाव पैदा होता है। प्रेम-भाव और आपसी आकर्षण में वृद्धि होती है। आकर्षण एकता का सूत्र है। आकर्षण ममता और समता का सिद्धान्त है।

—डालसर, रामनगर, (उधमपुर), (जम्मू व कश्मीर)।

thearyasamaj.org

वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा

–डॉ. शारदा गुप्ता

आज के मानव-हृदय के सूनेपन को नष्ट करके उसे अनुराग के माधुर्य से आप्लावित करने की सामर्थ्य यदि कहीं है तो वह इसी दृष्टिकोण में है जिसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नाम से जाना जाता है। भारतीय-भ्रातृत्व-कल्पना को मूर्त्तरूप देने का प्रबलतम सहायत्व इसी 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' का है। यह एक ऐसा बन्धन है ज़िसमें बंधकर प्रत्येक प्राणी सुखी तथा स्वच्छन्द रह सकता है।

आज प्राणी उस ओर से विमुख होकर 'स्व' एवं 'पर' के झूले में झूलने के कारण ही बहुविध कष्ट भोग रहा है। 'स्व' और 'पर' की परिभाषा की संकीर्णता को त्याज्य मानकर 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' के अङ्गीकरण एवं स्वीकरण द्वारा ही मनुष्य वर्तमान परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है। आज के मानव ने अहम् के आसव का पान कर लिया है इसीलिए परिस्थितियों की भिन्नता के आधार पर मानव दूसरे मानव के बीच अन्तर की, भेद की मिथ्या कल्पना कर बैठा है। यदि मानव अपनी दृष्टि से व्यष्टि का भाव निकाल कर समष्टि का भाव समाविष्ट कर ले तो उसे यह सत्य अनुभूत होने लगेगा कि मानव मानव में कोई तात्त्विक भेद नहीं है, सभी प्राणी-जगत् मे एक ही चेतना से परिव्याप्त है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' संसार को एक इकाई में देखने का प्रयत्न है। व्यक्ति का समष्टि में पर्यवसान का महाघोष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में उद्घोष में है। यह उद्घोष छान्दोग्य-उपनिषद् के 'भूमा'[1] के समान है। जो सुख और अमृत का प्रतीक है। जिस प्रकार आत्मतत्त्व सर्वव्यापकता का द्योतक है उसी प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भावना भी सार्वभौम तथा सर्वव्यापक है और वही विश्वबन्धुत्व की प्रेरक है। यदि मनुष्य को आनन्द के परमोदधि में गोते लगाने हैं तो उसको संकुचित और संकीर्ण भावना से हटकर समष्टि, समदृष्टि तथा समसृष्टि रूपी पर्वत उतुङ्ग तुङ्ग पर पादन्यास करना होगा।

वास्तविक सुख तो सर्वात्मभाव में ही निहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मूल मन्त्र ही मानव और मानवता जैसी सर्वोपरि भावना का उद्भव-स्रोत बन सकता है। स्वार्थ के प्रतीक स्वत्व की संकीर्णता की परिणति तभी उदारता की कोटि में हो सकती है, जब वह अपने सुख को सभी के सुख में देखे।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रभाव की प्रतीति तभी हो सकती है जब सारा विश्व एक नीड़ के तुल्य प्रतीत होने लगे और मनुष्य स्वयं अखण्ड आनन्द की अनुभूति करने में सक्षम होने के साथ ही साथ जगती के अन्य प्राणियों को भी सुखी एवं

1. छां.उ. 6/23-25

thearyasamaj.org

आनन्दमय बनाने की अद्‌भुत सामर्थ्य से अनुस्यूत हो सके।

सामाजिक प्राणियों में सुख की आशा बंधाने वाला एकमात्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही मन्त्र हो सकता है। इसी से दुःखी मनुष्य का त्राण हो सकता है। यही एक ऐसा मन्त्र है जिसको अपनाने से व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और संसार सभी को आनन्द प्राप्त हो सकता है।

भारतीय संस्कृति का मूलस्तम्भ प्रत्येक प्राणी को समान रूप से समझना, उसके सुख-दुःख को अपना समझना तथा सभी को अपनाकर चलना है और इस प्रकार ही समान भावना तथा सम्पूर्ण संसार को कुटुम्बवत् समझना।

जीवन की पूर्णता तभी संभव हो सकती है जब मनुष्य में समता की भावना साकार रूप धारण कर ले। इसको ही भूमा कहते हैं और भूमा पूर्णता का ही नाम है। लोककल्याण और शाश्वत सुख, सम्पूर्ण पृथिवी को एक पारिवारिक दृष्टिकोण के सन्निवेश में देखने का ही नाम भूमा है। परम व्यापक होने के कारण समुद्र जिस प्रकार चारों ओर से उमड़ता दिखाई पड़ता है तथा उसमें उठने वाली लोल-लहरियों के मध्य ज्योतिष्मान् मणिसमूहकण बिखरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उसी प्रकार 'वसुधैवकुटुम्बकम्' के उदात्तभाव इस संसार में हाहाभूत करते हुए प्राणीसमूह के लिए सुखद अनुभूतियों के क्षणों को बटोर कर ला सकते हैं। उसी में अत्यन्त व्यापक समरसता के बीज निहित हैं। आज का मानव अनेकानेक जटिलताओं और वैषम्यों से ग्रस्त है। जीवन के विरोधों के परिहार का आधार एकमात्र सबको समान रूप से देखना है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना ही उस प्रेम की उद्‌भावना करता है जो हिंसा की प्रवृत्ति को समूल नष्ट कर सकती है और वही प्रवृत्ति जीवनकी विभीषिका एवं भीषणता को समाप्त करके मानव को शान्ति तथा आनन्द प्रदान कर सकती है।

संघर्ष-द्वेष-ईर्ष्या की कुत्सित भावनाओं ने ही इस सम्पूर्ण विश्व को संकीर्ण एवं कुण्ठित बना दिया है। ऐसे समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना ही मानवमात्र की रक्षा में समर्थ हो सकती है।

अपने सुख और अपने दुःख से ऊपर उठकर समस्त जगत् के सुख और दुःख को अपना समझकर जीवनयापन करने का नाम ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। एकरस होकर चरम भाव में उन्मज्जन करना जीवन-लहरों के बिखराव को समेटने के उत्कट मनोद्‌गार के रूप में करना तथा विश्वप्रेम का साक्षात्कार करना ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मनःस्थिति एक ऐसी परम अवस्था है जो 'पर' के भेद को तिरोहित करती है, 'निजत्व' की अवहेलना करती है, स्वार्थमूला प्रवृत्ति एवं प्रकृति का विध्वंस करती है और परार्थमूलक उद्‌भावनाओं को प्रेरित करती है, सर्वत्र एक चेतनता के विलास को अपलक देखने की सामर्थ्य पैदा करती है।

स्वत्व-निजत्व तो अस्थिर सुख और क्षणिक आनन्द के दायक हैं, मृगमरीचिका से अधिक कुछ नहीं हैं। समस्त प्राणी जगत् से एकाकार होकर गौरवमय आनन्द की अनुभूति तभी होती है जब व्यक्ति के हृदय में समग्रता का भाव उदित होता है, परत्व में स्वत्व की अन्वेषणा और गवेषणा का परिक्रमण परमावस्था में पहुँचता है।

thearyasamaj.org

आज के भौतिक संघर्षरत मानव का विज्ञानमय चिन्तन उसके मस्तिष्क के विकास का सूचक है परन्तु हृदय-पक्ष के एकमात्र औदार्यपूर्ण भाव ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में आविर्भूत होकर प्राणी को प्राणी से स्नेह और प्रेम के उद्रेक के साथ प्रीति-रस से भरकर सदैव परस्पर सौहार्द के कर-बन्धन में अनुस्यूत करता है।

समस्त मानवजाति को एक इकाई का रूप प्रदान करने वाली क्षमता का नाम ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। अपना-पराया, राष्ट्र-वर्ग, जाति-धर्म, वर्ग-वर्ण के भेदभाव को मिटाने की अपरिमित शक्ति जिस भाव में उसका नाम है 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। समरसता का अभाव विषमता को जन्म देता है। इसी कारण मानव सुख-दुःख के झमेलों में उलझा रहता है। मैं-मेरा, तू-तेरा, पाप-पुण्य, ऊँच-नीच, शापित-तापित, अच्छा-बुरा आदि का विमर्शन संकीर्णता एवं अल्पता का द्योतक है। जब मनुष्य समस्त भूमण्डल में एक पारिवारिक अनुभूति करने लगता है तब फिर उसे कहीं भी विषमता के दर्शन नहीं होते, और उसको कोई भी पराया प्रतीत नहीं होता। उसको सभी एक कुटुम्ब के समान दिखाई देते हैं। तब उसे न कोई तापित प्रतीत होता है और न कोई शापित, सर्वत्र जीवन-वसुधा समता प्रतीत होने लगती है। सभी पदार्थ एवं प्राणी आत्मवत् प्रतीत होने लगते हैं, सभी आत्मीय प्रतीत होने लगते हैं, कोई भी परत्व नहीं रहता, कोई स्वल्पत्व नहीं रहता, सभी में समभाव, समदृष्टि का आभास होने लगता है।

जो लोग अपने ही सुख और दुःख से पुलकित रहते हैं वे न तो स्वयं सुख और शांति से अपना जीवन यापित करते हैं और न ही दूसरे को सुखपूर्वक जीने देते हैं। परन्तु उन के लिए सम्पूर्ण वसुधा कुटुम्ब के समान होती है जिनका चरित उदार होता है। जिनकी विचारणा शक्ति एवं क्रिया-शक्ति में उदारता का दृष्टिकोण होता है। उदार दृष्टिकोण उसी का हो सकता है जो समस्त प्राणियों को अपने परिवार के सदस्य के समान समझता है। जिस की सोच संकीर्ण होती है, जिसमें अपने-पराए का भाव बना रहता है, वह कभी भी विश्वबन्धुता की अनूभूति एवं आनन्द का लाभ नहीं उठा सकता है। सामाजिक सुख-शान्ति का प्रजापति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव है। सामाजिक कल्याण 'स्वत्वभाव' में नहीं प्रत्युत 'समत्वभाव' में है। अपने 'अहम्' की चेतनता में सबको समेट लेना ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। स्वार्थ से ऊपर उठकर परार्थ के मार्ग को प्रशस्त करने वाला भाव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में ही है।

अन्ततः यही लिखा जा सकता है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सृष्टि का प्रत्येक कण, और प्रत्येक अणु-परमाणु अपना ही है। सभी प्राणियों को अपने से भिन्न मानना सभी प्राणियों का हित करना, कल्याण करना, किसी अन्य की सेवा करने का नाम नहीं है अपितु अपना ही एकांतिक एवं आत्यंतिक सुख साधन का नाम है। अतः विश्व के सौन्दर्य को अनन्त एवं अखण्ड बनाए रखने के प्रबलतम साक्ष्य का नाम ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है।

-संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

thearyasamaj.org

राजयोगः एक पुनर्व्याख्या

– डॉ. आदित्य आंगिरस

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक 'राजयोग' के माध्यम से जो बात ज्ञानपूर्वक कर्म करने के लिये कही है, वह वस्तुतः ज्ञानपूर्वक कर्म अथवा राजयोग एक विशेष प्रकार के चिन्तन का विषय है जो मनुष्य को इस जन्म एवं अवांतर जन्म में सुख देने वाला है।

श्रीमद्भगवद्गीता[1] में इन्हीं संदर्भों में एक बात आती है जो यह दर्शाती है कि यह योग-परम्परा अत्यंत प्राचीन है। इस के माध्यम से यह बात तो स्पष्ट होती है कि इस योग अथवा राजयोग को कृष्ण ने सृष्टि के आदि में सूर्य को कहा, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत को, उसने मनु को और मनु ने राजा इक्ष्वाकु को इस ज्ञानयोग अथवा राजयोग को बताया। यही ज्ञान योगपरम्परा से प्राप्त होकर राजर्षियों में प्रधानरूप से विद्यमान रहा। इस योग को राजयोग संभवतः इसीलिये कहा जाता है, क्योंकि ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस योग को पूर्वकालीन राजाओं ने अपने आचरण में गृहीत किया जिसके फलस्वरूप इसे राजयोग कहा जाने लगा।

भारतीय धरा पर, यह तो निश्चित है, कि समयानुसार योग की परम्परा रही है और हठयोग, ज्ञानयोग, पातञ्जलयोग आदि ऐसी परम्पराएं रही हैं जो वर्तमान में भी प्रचलित हैं। ये यौगिक परम्पराएं जहां एक ओर सिद्धि के विषय में बात करती हैं और सिद्धि प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं वहीं दूसरी ओर यह विद्या मनुष्य को आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर करती हुई उसे मोक्ष की ओर ले जाने में सक्षम है। पातञ्जल योगसूत्र में सम्प्रज्ञात समाधि से असम्प्रज्ञात समाधि तक के रास्ते का विशद वर्णन हमें देखने को मिलता है, परन्तु वह मार्ग भी राजयोग की ही बात करता है जिसके विषय में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं।

यह बात तो निश्चित ही है कि मनुष्य इस संसार में अपने कर्म-चक्र में फंस कर पुनः - पुनः जन्म लेता है और कालक्रमागत मृत्यु को प्राप्त होता है। कृष्ण अर्जुन को यही बात कह कर समझाते हैं कि मृत्यु अवश्यंभावी है एवं जन्म भी अवश्यंभावी है।[2]

लिखने कि आवश्यकता नहीं कि इस संसार में पुनरागमन की प्रक्रिया के अन्तर्गत जिस तत्व की विशेषता रहती है वह है अज्ञानपूर्वक किये हुए कर्म। वही तत्व ही जीव को पुनर्जन्म के लिए प्रेरित करता है। ऐसे में इस भव-बन्धन से छूटने

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 4.1-2   2. वही, 4. 5

thearyasamaj.org

के लिए प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न तो करता है, परन्तु प्रयत्न करने के पश्चात् भी वह किसी भी प्रकार से इस बन्धन से छूटता नहीं। कठोपनिषद् में इन्हीं संदर्भों में कहा गया है कि अविद्या के प्रभाव के अन्तर्गत मनुष्य अपने आप को सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता समझता है अर्थात् वह यह समझता है कि जो-जो कर्म वह कर रहा है वह उदाहरण रूप में किये जा सकते हैं। वस्तुत: उसकी स्थिति और उसके कृत कर्मों का अनुसरण करने वालों की स्थिति अन्धे व्यक्ति के पीछे अनुसरण करने वाले अन्धों से कदापि श्रेष्ठ नहीं होती है।[3] इन्हीं संदर्भों में कठोपनिषद् में ही एक बात कही गई है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य के सामने श्रेयस् एवं प्रेयस् समान रूप से उपस्थित होते हैं। उनमें से धीर व्यक्तियों का ध्यान प्रेयस् की अपेक्षा श्रेयस् पर रहता है एवं उसी के माध्यम से वे अपने योग एवं क्षेत्र को चुनता है।[4] इसका तात्पर्य है कि श्रेष्ठ व्यक्ति का चरित्र सत्यज्ञान पर आधारित होता है। पातंजल योगसूत्र में इसी को विवेकख्याति के नाम से अभिहित किया गया है जहां मनुष्य सत् एवं असत् के बीच में भेद करना सीखता है।

ऐसे में प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य ऐसे ज्ञान को कैसे प्राप्त कर सकता है जिससे उसके उन कर्मों की समाप्ति हो जाय, जिनके कारण वह बार-बार पृथिवी पर जन्म लेता है। उसका उत्तर हमें गीता में मिल जाता है। जब श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि संयतेन्द्रिय रह कर श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और यह ज्ञान प्राप्त होने पर शीघ्र ही वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है।[5] स्वामी विवेकानन्द राजयोग के माध्यम से जिस योग की बात करते हैं वह वस्तुतः ज्ञानयोग की ही बात है। यह ज्ञानयोग संयतेन्द्रिय रह कर श्रद्धापूर्वक आचरण से ही प्राप्त हो सकता है।[6]

इस जगत् में ऐसे ज्ञान के समान पवित्र करने वाला तत्त्व कोई और नहीं है। इस योग में गया हुआ व्यक्ति कर्मयोग द्वारा शुद्धान्त:करण से युक्त हुआ स्वयं को पा लेता है।

औपनिषदिक राजा जनक आदि, जिन्हें आज भी विदेहराज के नाम से अभिहित किया जाता है, वस्तुतः वे इसी योग में अग्रसर हो कर अपने दैनिक व्यवहार में इसे प्रयुक्त करते रहे हैं। इसी को आधार बना कर स्वामी विवेकानन्द ने समस्त विश्व से कामना की है कि हम अपने व्यवहार में संयतेन्द्रिय रह कर अपने को ज्ञानमार्ग पर उन्मुख करते रहें। इसी में संसार का कल्याण तथा मानव जाति का श्रेय है।

–वी.वी.बी.आई.एस., साधु आश्रम, होशियारपुर

3. कठोपनिषद् 1. 2. 5
4. वही, 1. 2. 2
5. वही, 4. 39
6. वही, 4. 38

thearyasamaj.org

भाति में भारतम् में काव्यतत्त्व

—डॉ. रितू बाला

पद्मश्री (डॉ.) रमाकान्तशुक्ल विरचित 'भाति में भारतम्' एक शतककाव्य है। इसमें कुल 108 पद्य हैं। यदि इस काव्य को मालाकाव्य कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि माला में भी 108 मनके होते हैं।

इस काव्य में डॉ. शुक्ल ने अपने भारतराष्ट्र की विशिष्टताओं का वर्णन करते हुए भारतीयों को अपने राष्ट्र पर गर्व करने का संदेश दिया है क्योंकि राष्ट्र और नागरिक एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि इस बात पर भी निर्भर करती है कि देश के नागरिकों को अपने कर्तव्य का बोध है कि नहीं। राष्ट्र का अर्थ किसी सीमाविशेष से न होकर उस समस्त भूमण्डल से है जहां के नागरिक उस भूमण्डल की संस्कृति का समानरूप से आदर करते हों। उनका अपना एक विधान हो और उस विधान को मानने वाले जहां कहीं रहते हों वे उस के नागरिक कहलाते हैं।

प्राचीन सभ्यता से सुशोभित इस काव्य में वेदों की प्रभा से भासुर, शैव, वैष्णव, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, मुस्लिम, सूफी आदि मार्गों, गंगा, यमुना, चिनाव, नर्मदा, तुंगभद्रा, व्यास, सतलुज आदि नदियों; संस्कृत, प्राकृत, पाली, तमिल, तेलुगु, कन्नडी, केरली, बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी इत्यादि अनेक भाषाओं; रामायण, महाभारत, पुराण, गद्य, पद्य, श्रव्यकाव्यों, दृश्यकाव्यों, गीतों, विविध नृत्यों; होली, दशहरा, रक्षाबन्धन, दीपावली, लोहड़ी उत्सवों; स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द, श्रीगुरु नानक देव इत्यादि विभूतियों का वर्णन किया गया है।

डॉ. रमाकान्त शुक्ल ने अपने काव्य में विश्वजनीन राष्ट्रीयभावना को प्रारम्भिक दो पद्यों में प्रकट करते हुए कहा है कि–

भारतं वर्तते मे परं सम्बलं
भारतं नित्यमेव स्मरामि प्रियम्।
भारतेनास्ति में जीवनं जीवनं,
भारतायार्पितं मेऽखिलं चेष्टितम्।।
भारताद् भाति मे भूतलं भूतलं,
भारतस्य प्रतिष्ठास्ति मे मानसे।
भारतेऽहं प्रपश्यामि विश्वेश्वरं,
भारत! क्षोणिशृङ्गार! तुभ्यं नमः।।[1]

काव्यदर्शन –

कु धातु से निष्पन्न कवि शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– कवते श्लोकान् ग्रथते वेति कवि[2]:, कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति, सर्वं

1. भाति मे भारतम् भूमिका, पृ. सं. – 8

thearyasamaj.org

सर्वतो गच्छतीति कवि[3]:। तात्पर्य है कि सर्वज्ञ, सभी विषयों का वर्णन करने वाला कवि होता है। यही कवि शब्द सर्वप्रथम वेद में 'कविर्मनीषी-परिभूः स्वयम्भूः[4] द्वारा परमात्मा के लिए प्रयुक्त किया गया है। काव्यकारों में कवि शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि तत्पश्चात् वेदव्यास और फिर साहित्याचार्यों के लिए किया गया है। इसी कवि शब्द द्वारा कवेरिदं कर्म भावो वा काव्यमिति[5] के आधार पर कविनिष्ठ कर्म को काव्य कहा गया है। काव्यप्रकाश में कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि कहा गया है।[6]

ध्वन्यालोक में कहा गया है कि संसार में कवि स्वयं ब्रह्मा के समान है और वह जिस प्रकार चाहता है उसी प्रकार की सृष्टि को अपने रूप में बदल कर वर्णन कर देता है[7]।

भारत की भूमि प्राकृतिक दृश्यों के कारण सदैव मनोरम प्रतीत होती रही है। कवि ने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है जैसे-

कोकिलैः कूजितैः षट्पदैर्गुञ्जितं,
केकिभिर्नृत्यपारङ्गतैर्नादितम्।
सारिका-कीर-वादप्रवादैर्युतं,
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्[8]।। इत्यादि

इस प्रकार का सहज प्रकृतिचित्रण सहृदयों के हृदयों को आह्लादित करने वाला होता है।

इसके अतिरिक्त नदियों का, पर्वतों का, तीर्थों का, केरल-कश्मीर-प्रयाग इत्यादि का नितान्त मनोहारी वर्णन काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने में समर्थ है।[9]

इस देश का गौरवपूर्ण साहित्य किसी भी मनीषी को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ है। इसी गौरवपूर्ण साहित्य के कारण आज भी इस देश का गुरुत्व अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है। दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन के अलौकिक शब्द-भण्डार का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि वेदों की प्रभा से भासुर, सत्कलाओं से विलसित, रमणीय संगीत और साहित्य के फलने-फूलने की भूमि तथा सरस्वती की लहरों की वीणा की झंकारों से झंकृत मेरा भारत भूमण्डल में सदा सशोभित है।[10]

कवि आगे लिखता है कि जो त्रयी, सांख्य, योग आदि मार्गों से जीवन को मुक्त करने की चेष्टा करता है एवं जिसकी शील, सन्तोष तथा सत्य आदि से रक्षा होती है, वह मेरा भारत भूतल पर सुशोभित हो रहा है।[11]

प्रायशः कवि प्रसाङ्गानुकूल वर्णन में राष्ट्र की नवीन उपलब्धियों की उपेक्षा करते हुए नजर आते है। परन्तु यहाँ कवि ने अपने काव्य में नवीनोपलब्धियों का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है-भाखड़ा बांध, दामोदर घाटी योजना, बाणगंगा योजना तथा फरक्का बांध आदि योजना,

---

2. अमरकोष.
3. हलायुधकोश
4. यजु., 40.8
5. मेदिनीकोश.
6. काव्यप्रकाश, 1.1
7. ध्वन्यालोक 3.43 वृत्ति
8. भाति में भारतम्-40
9. वही, 9,35,28,49-50
10. वही, 6

thearyasamaj.org

ब्रह्मपुत्र आदि नदियां जिसमें जल की सुन्दर छटा दिखाई देती है। ऐसा मेरा भारत भूमण्डल में सदा शोभायमान रहता है। बिजली के उत्पादन में, तेल के शोधन में, ईंधन के अन्वेषण में, इस्पात बनाने में तथा विविध मशीनें बनाने में पूर्ण समर्थ मेरा भारत भूतल में निरन्तर शोभित हो रहा है।[12]

जहाँ तक अलकारों की योजना का प्रश्न है कवि ने इस काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि के शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, विशेषकर अनुप्रास अलंकार की छदा पग-2 पर देखी जा सकती है। जैसे-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं,
विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत्।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्,
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्।।[13]

यह वृत्यनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार कवि ने पूरे काव्य में अनुप्रास की छटा को बिखेरा हुआ है। इसी प्रकार अर्थालङ्कार की शोभा भी यत्र-तत्र देखी जा सकती है। कवि ने काव्य में छन्दों का भी समुचित प्रयोग किया है-

प्रेरणादायकं सत्कथागायकं
ज्ञानविज्ञानतेजोबलाधायकम्।
दुःखदारिदयद्रग्धान् सदा पालय-
न्मोदते मे सदा पावनं भारतम्।।[14]

इस पद्य में स्रग्विनी छन्द है। जिसके चारों चरणों में चार रगण होते हैं। वस्तुतः कवि ने इस काव्य में अपनी प्रतिभा के माध्यम से जो राष्ट्र की महिमा का गान किया है उसका बिम्ब-प्रतिबिम्ब -भाव स्पष्टरूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस काव्य के अध्ययन से कोमल बुद्धि वाला व्यक्ति भी अपने राष्ट्रधर्म, अपने देश के प्रति प्रेम, स्वदेशीय सदाचार, उच्च चरित्र, प्रतिष्ठा को समझने में सक्षम है।

-असि. प्रोफैसर, वी.वी.बी.आई.एस. एण्ड आई.एस, साधु आश्रम, होशियारपुर

12. वही, 11-12
13. भाति में भारतम् - 1
14. छन्दोमंजरी, द्वितीयस्तबक,पृ

thearyasamaj.org

आधुनिक न्याय-व्यवस्था में अर्थशास्त्र की प्रासङ्गिकता

-डॉ. कुन्ती देवी

कौटिल्यकालीन राजनैतिक क्षेत्र में न्याय-व्यवस्था का अपना विशेष महत्त्व है। उस समय अनेकों सन्देहों को दूर करना व्यवहार कहलाता था या किसी विषय के तय करने का साधन भी व्यवहार ही कहलाता था। लौकिक एवं पारलौकिक कष्टों को दूर करना प्रजारक्षण है। जब मनुष्य में धर्म का ह्रास होने लगा तब धर्म एवं न्याय को परिवर्तन हुआ और राजा झगड़ों का दूर करने वाला एवं दण्डधर घोषित हुआ। जो व्यक्ति परिषद् व्यवहार सम्बंधी मामलों की सुनवाई करता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। हर क्षेत्र में कौटिल्य ने दण्डनीति का उल्लेख किया है जो न्याय व्यवस्था के अंतगर्त आता है जिसका महत्त्व आधुनिक काल में अधिक नहीं है।

न्यायालय :- न्यायालय वह होता है यहां जो काठके तख्ते के समान है जो सभा में रखा रहता है और जिस पर पुत्रहीन विधवा खड़ी होकर अपने पति के धन का अधिकार मांगती है। न्यायालय के चार प्रकार थे, प्रतिष्ठित-जो किसी पुर या ग्राम में प्रतिष्ठित हो, अप्रतिष्ठत-जो एक स्थान पर प्रतिष्ठित हो और राजा की मुहर प्रयोग में ला सके। न्यायालय को धर्मस्थान धर्मासन या सदस भी कहा गया है। कौटिल्य का कहना है कि राजा को दिन के दूसरे भाग में जनता के मामलों को देखना चाहिए। इसलिये उसने दिन को आठ भागों में बांटा है। राजा दिन के द्वितीय भाग में पुरवासियों तथा जनपदवासियों का काम देखे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे। चौथे भाग में नगद रुपयों को लेकर कार्य विशेष पर अध्यक्षों की नियुक्ति करे। पांचवे भाग में पत्र व्यवहार द्वारा मंत्रिपरिषद् से मंत्रणा करे और गुप्तचरों के प्रति गुप्त विषयक होने वाले कार्यों की समीक्षा करे। दिन के छठे भाग में स्वच्छंद विहार अथवा मंत्रणा का कार्य करे। सातवें भाग में राजा, हाथी,घोड़े, रथ तथा शस्त्रों का पर्यवेक्षण करे। आठवें भाग में सेनापति को साथ लेकर युद्धादि पराक्रम विषयक आलोचना करे। जो नियम उस एक राजा के लिये थे। यही नियम आज के युग में राष्ट्रपति पर लागू होते हैं।

माल और फौजदारी अभियोगः- कौटिल्य ने माल और फौजदारी अभियोग से सम्बंधित मुकद्दमों की ओर संकेत किया है। उस समय अभियुक्त व्यक्ति अभियोग चलाने वाले के ऊपर तब तक कोई मामला नहीं चला सकता था जब तक कि उपस्थित मामले का फैसला न हो जाये, परन्तु कलह, सांहस, समावायविषयक

thearyasamaj.org

प्रत्यभियोग चलाया जा सकता था। आधुनिक काल में भी बिल्कुल ऐसा ही है।

न्यायाधीश:- न्यायाधीश जिसे आज के युग में जज कहा जाता है। परन्तु उस युग में न्याय करने के लिये राजा 37 अमात्यों में से कुछ को ही चुनकर इस पद पर नियुक्त करता था। राजकुमार भी न्यायाधीश के पद पर नियुक्त होता था। यह नियुक्ति धर्मासन को ही धर्म का मूल माना जाता था, तत्कालीन धार्मिक नियोजन के अनुसार यदि धर्मासन पर नियुक्त व्यक्ति उचित न्याय नहीं करता तो वह राजा के साथ नरक में जा गिरता है ऐसी मान्यता थी। जो व्यक्ति किसी साक्षी को उपस्थित न करके स्वयं अपना मामला चलाता था उसे पराजित पक्ष से मिलने वाले धन का दशांश दण्ड दिया जाता था। न्यायस्थान पर वादी-प्रतिवादी बिना रोक-टोक ही पहुंच सकते थे। वादी अपना मत कहता था और प्रतिवादी उसका उत्तर देता था। राजा स्वयं वादी और प्रतिवादी से अपने सन्देह मिटाने के लिये प्रश्न भी पूछता था। झूठ बोलने पर जीभ काटने का दण्ड दिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि दण्ड की व्यवस्था प्रत्युत्पन्न बुद्धि के अनुसार हो सकती थी। जज सदैव श्रुति और स्मृति का आधार लिया करते थे। धर्मानुसार न्याय करने वाले जिस मुखिया को लोग उपहार देते थे उन्हें राजदण्ड का भागी होना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय की तुलना में आज भी साक्षी या गवाह का उतना ही महत्त्व है जितना उस समय में था।

दण्डव्यवस्था:- दण्ड व्यवस्था उस समय में एक महत्वपूर्ण संस्था थी, जिसका प्रचलन आज भी है। कौटिल्य ने राज्यसंस्था के अंतर्गत राज्य के सात अंग बताये थे, जैसे स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र। परन्तु इनमें दण्ड अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सभी का आधार एकमात्र दण्ड ही है। कौटिल्य ने दण्ड को ही राज्य कहा है, कहने का तात्पर्य है कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्र दण्डनीति के द्वारा ही व्यवस्थित रहते हैं। दण्ड-नीति जैसी कोई अन्य नीति नहीं है, जिसके द्वारा शासन चलाया जा सके। अगर आधुनिक युग में भी हमारी सरकार सभी विभागों में दण्डनीति को अपनाये तो लोग अनुशासन में रह सकते हैं, न भ्रष्टाचार फैल सकता है और न आतंकवाद। तभी देश सुरक्षित रह सकता है, लेकिन ऐसा नहीं है, पर प्रयत्न किया जाय तो सब कुछ संभव है।

यदि यह लिखा जाये कि जब तक आधुनिक युग में भी कौटिल्य वाली न्यायव्यवस्था लागू नहीं की जाती तब तक देश से बुराईयों जैसे आतंकवाद, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि को समाप्त नहीं किया जा सकता है, ऐसा लिखने में कोई बुराई नहीं है।

-पो., संग्रामपुर, तह. तथा जिला जम्मू।

thearyasamaj.org

संस्कृति सभ्यता के आईने से भारत का परिवेश

- सुश्री अनु पुरी

भारतीय संस्कृति देवसंस्कृति है। समूची विश्व मानवता की अन्त:प्रेरणा को श्रेष्ठ दिशा में प्रेरित करने, सद्गुणों को भली प्रकार विकसित करने की क्षमता इस में कूट-कूट कर भरी हुई है। जीवनपद्धति, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक जीवन, उत्सव, पर्व-त्यौहारों आदि के सम्मिलित स्वरूप से ही किसी संस्कृति का बोध होता है। संस्कृति किसी भी समाज एवं उसके इतिहास का दर्पण है। मानव-समाज की पूर्व परम्पराएँ पूर्वजों के संस्कार, जिनमें प्राचीनता के साथ-साथ मान्यता प्राप्त नवीनताएँ भी शामिल होती हैं, संस्कृति कहलाती हैं।

संस्कृति अर्थात् सम्+कृति यानि उत्तम चेष्टाएँ। यदि संस्कृति का आशय उत्तमकृति है, तो निश्चित ही उसका सम्बन्ध मनुष्य के शरीर, प्राण, मन, बुद्धि आदि से है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि वे उत्तम अभिव्यक्तियाँ ही संस्कृति हैं जिनके द्वारा मानवता को सतत ही विशिष्टता प्राप्त होती रही है- आधिभौतिक भी, आधिदैविक भी और आध्यात्मिक भी।

संस्कृति सभ्यता का वह स्वरूप है जो मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक वैशिष्ट्य का द्योतक होता है। दूसरे शब्दों में संस्कृति मानव अंथवा मानवसमुदाय की मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों की अभिवृद्धि और परिष्करण की सूचक है। किसी भी देश या जाति की आचरण परक अनुश्रुति भी उसकी संस्कृति का द्योतक होती है।

समाज के जीवन्त गर्भ से दो अंकुर फूटते हैं जिन में एक सभ्यता है तो दूसरा संस्कृति। संस्कृति और सभ्यता दो अलग-अलग शब्द हैं।

संस्कृति का आधार मुख्यत: आचार से और सभ्यता का आधार विचारों से है। अत: संस्कृति और सभ्यता दोनों परस्परापेक्ष्य सिद्ध होती हैं। सभ्यता वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान इत्यादि पक्षों तक ही सीमित है जबकि संस्कृति चिन्तन से लेकर जीवनव्यवहार एवं मानवी संवेदना से लेकर समष्टिगत एकता जैसे पक्षों को स्पर्श करती है। धर्म, दर्शन, विज्ञान, नैतिकता, न्याय, चेतना, दया-प्रेम, करुणा आदि मानवता के मर्मस्पर्शी रूप सब संस्कृति के ही रूप हैं। सभ्यता का सम्बन्ध मूर्त और भौतिक पदार्थों से है। जो हमें विरासत में नहीं मिलते हैं, अपितु इनका निर्माण हम अपनी आवश्यकतानुसार करते हैं।

'सभ्य' शब्द का सामान्य अर्थ होता है शिष्ट। सभ्य से सभ्यता शब्द बनता है, जिसका अर्थ हुआ शिष्टता। सभ्यता एक सामाजिक गुण है। मनुष्य

thearyasamaj.org

सुश्री अनु पुरी

एक सामाजिक प्राणी है और सभ्यता का उदय भी समाज से ही हुआ है। किसी व्यक्ति, राष्ट्र अथवा जाति की सभ्यता का नाम उसके रहन-सहन, रीति-रिवाज, खानपान तथा भाषा-साहित्य से किया जाता है।

सभ्यता का उत्थान मानव को प्रगतिवाद की ओर ले जाना है, जबकि संस्कृति मानव को अन्तर्मुखी करके उसके सात्विक गुणों को प्रकट करती है। संस्कृति का यह सामान्य अर्थ बताया गया है।

सभ्यता और संस्कृति को अलग करके नहीं देखा जा सकता, क्योंकि दोनों का उद्गम स्थान एक ही है-समाज। सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे की पूरक और साधक हैं। हमारे यहाँ ज्ञान की दो शाखाएँ निर्धारित की गई हैं- पहली अनुभवजन्य तथा दूसरी बुद्धि जन्य। अनुभव जन्य ज्ञान संस्कृति का सम्बन्ध अन्तर्जगत् और सभ्यता का बाह्यजगत् से है। जब संस्कृति की मूल्यचेतना कमज़ोर पड़ जाती है तो सभ्यताएँ नष्ट हो जाती हैं। सभ्यता के टूट जाने पर भी संस्कृति के मूल्य दब जाते हैं। इस तरह हम यही कह सकते हैं कि संस्कृति और सभ्यता दोनों ही सर्वथा असम्बद्ध न होते हुए भी परस्पर भिन्न हैं।

महासागर की तरह जीवनदर्शन की ऐसी गहराई जिससे हिमालय जैसा व्यक्तित्व निर्मित हो, भारतीय संस्कृति से ही सम्भव है, जो एक ओर हिमालय और दूसरी ओर महासागर के बीच पल रही है- दोनों की श्रेष्ठता और विशिष्टता को अपनी गोद में लिए हुए।

-- 241 डी., राजगुरु नगर, लुधियाना।

thearyasamaj.org

महान् वीरांगना दुर्गा भाभी

– आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

वीरागंना दुर्गा भाभी जी ने अपने साहसी और समर्पित जीवन को सार्थकता प्रदान करते हुए अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया है। अपने क्रान्तिकारी सहयोगियों की प्यारी भाभी ने उनका कदम-कदम पर साथ दिया और इस प्रकार वे क्रान्तिकारियों में अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। भाभी जी के वंशज कौशाम्बी जनपद में रहते थे तथा यहीं पर श्री बांकेबिहारी भट्ट जी की पहली पत्नी को इस वीरांगना की मां बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका जन्म 7 अक्तूबर, 1907 को प्रात:काल हुआ। क्योंकि वह दुर्गापूजा का समय था, इसलिए पुत्री का नाम दुर्गा ही रखा गया। पिता की दूसरी पत्नी का व्यवहार इनके साथ ठीक नहीं था और इसी कारण संभवत: बचपन में ही ये विद्रोही स्वभाव की बन गईं। उनका पालन-पोषण उनकी बुआ कृष्णा ने किया। बचपन पहले शहजादपुर और फिर कुटी करेहटी में बीता। मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में इनका विवाह भगवती चरण बोहरा जी के साथ हो गया। शादी के बाद दुर्गा भाभी के पिता जी ने इलाहाबाद स्थित कटरा का मकान दुर्गा को कन्यादान में दे दिया था। उन्होंने स्वयं संन्यास लेकर अपना जीवन कुटी करेहटी में व्यतीत किया। यहां वे आत्मानन्द परपमहंस के रूप में प्रसिद्ध हुए। 27 जुलाई, 1920 में जब बोहरा जी के पिता का देहान्त हो गया तो वे खुलकर भारत को स्वतन्त्र कराने के अभियान में क्रान्तिकारियों के साथ हो लिए। अंग्रेजों से परेशान होकर दुर्गा भाभी अपने पति के साथ छुपकर जन्मस्थली कौशाम्बी जनपद के शहजादपुर अपने मायके कृष्णा बुआ के पास आ गई। दो महीने ससुराल में रहकर भगवतीचरण वहीं से क्रान्तिकारियों का उत्साहवर्धन करते रहे मगर 26 सितम्बर, 1920 को वे पत्नी सहित लाहौर चले आए। यहां उनका सम्पर्क लाला लाजपतराय तथा उनके नैशनल कालेज में अध्ययनरत भगतसिंह, सुखदेव व यशपाल आदि क्रान्तिकारियों से घनिष्ठता के साथ हुआ। जब लाहौर में क्रान्तिकारियों के गुप्त अड्डों पर क्रान्तिकारियों की अंग्रेजों के विरुद्ध योजनाएं बनतीं तो दुर्गा भाभी क्रान्तिकारियों के संकेत पर गुप्त रूप से सन्देश व शस्त्र इधर से उधर पहुंचाने का काम करती थी। भगवतीचरण बोहरा क्रान्तिकारियों में सबसे बड़े थे। इसलिए सभी दुर्गा जी को भाभी कहकर पुकारते थे। इस प्रकार वे क्रान्तिकारियों की प्रिय भाभी बन गई।

18 दिसम्बर, 1928 को लाला लाजपतराय की शहादत का बदला लेने के निमित्त चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह तथा राजगुरु द्वारा लाहौर के बाजार में सांडर्स को गोलियों से भून दिया गया। दुर्गा भाभी ने एक बार स्वयं बताया था कि जब

thearyasamaj.org

सांडर्स को गोलियां मारी गई थीं तो वे अपने कमरे में संस्कृत का अध्ययन कर रही थीं। अंग्रेजी सिपाहियों से क्रान्तिकारियों को लाहौर से सुरक्षित निकाल कर ले जाना उस समय एक टेढ़ी खीर थी। रात के ग्यारह बजे अचानक सुखदेव ने दरवाजा खटखटाया और जब पूरी बात भाभी जी को बताई तो वे जरा-सी भी नहीं घबराई बल्कि तुरन्त सुखदेव को पांच सौ रूपए दिए और यही नहीं एक योजना के तहत उस रूढ़ीग्रस्त युग में भी भगतसिंह की पत्नी बनकर तथा अढ़ाई वर्ष के अपने बेटे शचीन्द्र को साथ लेकर अगले दिन की प्रात:काल की रेल से कलकता के लिए रवाना हो गई। भगतसिंह अंग्रेजी पोशाक में हैट लगाए हुए थे तथा सुखदेव इस तथाकथित दम्पति के नौकर के रूप में साथ चल रहे थे। रेल के उसी डिब्बे में रामनामी चादर ओढ़े हुए चन्द्रशेखर आजाद भी पहले से ही मौजूद थे। चन्द्रशेखर आजाद तो पूर्व योजना के अनुसार बड़ी चतुराई से मथुरा में उतर गए। मगर दुर्गा भाभी ने समूचे अंग्रेजी प्रशासन की आंखों में धूल झोंक कर क्रान्तिकारियों को कलकता में सुरक्षित पहुंचा दिया। इस साहसिक कार्य से भाभी जी का आत्मविश्वास बहुत अधिक बढ़ गया तथा वे क्रान्तिकारियों के हृदय में बस गई। कलकता स्टेशन पर उनके पति बोहरा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पत्नी की पीठ ठोंकते हुए कहा कि आज हमारी असली शादी हुई है।

8 अप्रैल, 1927 को दिल्ली असैम्बली में दमनकारी पब्लिक सेफटी बिल प्रस्तुत करते समय भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने इन्कलाब जिन्दाबाद व साम्राज्यवाद का नाश हो, के नारे लगाकर वहीं पर बम फेंके। ये दोनों जानबूझकर वहीं पर गिरफतार हो गए। इन्हें जेल जाते समय पुलिस से छुड़ाने के लिए चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण बोहरा, यशपाल,धन्वन्तरी, वैशम्पायन आदि ने बम फोड़कर आतंकित करने की योजना बनाई। इधर दुर्गाभाभी लाहौर में ही रहकर क्रान्तिकारियों से मिलती रही। वे अब सक्रियता के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों से जुड़ गई थीं। दुर्भाग्यवश 28 मई, 1930 को उनके पति भगवतीचरण वोहरा जी रावी तट पर एक बम का परीक्षण करते हुए अचानक शहीद हो गए। अपने इस क्रान्तिकारी साथी की मृत्यु पर कहते हैं कि चन्द्रशेखर आजाद तथा अन्य समस्त क्रान्तिकारी बन्धु फफक-फफक कर रो पड़े, परन्तु दुर्गा भाभी ने साहस और संयम से काम लिया। क्योंकि वह समय और भी अधिक खतरे से भरा हुआ था। जरा-सी भूल से सभी क्रान्तिकारी पकड़े जा सकते थे। पति की लाश सामने पड़ी थी और यह वीरांगना सबके सामने सुहागन का वेश बनाए खड़ी हुई थी। अन्तत: भाभी जी ने अपने पति की शहीदी पर यह कठोर व्रत लिया कि वे आजीवन क्रान्तिकारियों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करेंगी और जीवनपर्यन्त स्वतन्त्रता-संग्राम में अपने जीवन की आहुति देती रहेंगी। उन्होंने अपने इस व्रत को आजीवन निभाया भी।

23 मार्च, 1931 को भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी देने की तिथि तय हुई तो दुर्गा भाभी तड़प उठी। वे किसी भी प्रकार इन्हें बचाना चाहती थीं। इस कार्य के लिए वे गुप्त रूप से महात्मा गांधी से जाकर मिली और उन्हें कहा कि यदि वे हस्तक्षेप करें तो इन युवकों को बचाया जा सकता है। मगर अहिंसा के पुजारी गांधी जी ने

thearyasamaj.org

इस ओर ध्यान नहीं दिया। इतने पर भी भाभी निराश नहीं हुईं। उन्होंने इन क्रान्तिकारियों की शहादत का बदला लेने के लिए पृथ्वीसिंह आजाद तथा वैशम्पायन के साथ मिलकर मुम्बई में पुलिस कमिशनर हेली को मारने की योजना बनाई। वहां लैमिंगटन रोड़ पर रात के एक बजे क्लब के सामने कुछ गोरे लोगों को गाड़ी से देखा तो दुर्गा भाभी जी ने स्वयं उस दरिन्दे का काम तमाम करने के लिए उस पर गोली चलाई मगर अफसोस हेली बच गया क्योंकि गोली सार्जेंट और गोरी मेम को लगी। पुलिस अब साए की तरह उनका पीछा करने लगी। उनकी गिरफतारी का वारंट था और ऐसे में अपने नन्हें बच्चे की परवाह न करते हुए दुर्गा भाभी क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहीं। परन्तु पुलिस की चौकन्नी नजरों से बच पाना बहुत ही कठिन था। वे लाहौर पंहुचने पर गिरफतार कर ली गईं। एक साल की कठोर सजा मिली जो लाहौर छावनी जेल में काटी। इसके बाद तीन वर्ष के लिए लाहौर में ही नजर बन्द कर दी गई। सन् 1935 में उन्हें लाहौर से निष्कासित कर दिया गया और अगला पड़ाव दिल्ली था।

दुर्गा भाभी जी ने कुछ काल के लिए इलाहाबाद को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया तथा चन्द्रशेखर आजाद जिन्हें वे भैया कहती थीं, उनके साथ विशेष सहयोग दिया। आजाद दुर्गा भाभी के इकलौते बेटे शचीन्द्र को बेहद स्नेह करते थे। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि आजाद जी ने अन्त समय में अल्फ्रेड पार्क में जिस पिस्तौल से अपनी जीवन लीला समाप्त की थी वह पिस्तौल भी दुर्गाभाभी ही जयपुर से लाई थी। दुर्गा भाभी पर एक से बढ़कर एक मुसीबतें लगातार आती रहीं मगर अन्दर ही अन्दर बुरी तरह टूट जाने के बावजूद भी उन्होंने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग को नहीं छोड़ा।

देश की स्वाधीनता के बाद उन्होंने अपना जीवन समाजसेवा, शिक्षासेवा और क्रान्तिकारी परिवारों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में देश में बढ़ रहे जातिवाद, सम्प्रदायवाद तथा भ्रष्टाचार से बहुत व्यथित थीं। गत दिनों एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहा था कि क्रान्तिकारियों ने जिस स्वतन्त्र भारत की कल्पना को सामने रखकर अपने प्राण उत्सर्ग किए थे, आज भी वैसा भारत नहीं बन पाया है। अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने आगे कहा था कि तप और त्याग का युग समाप्त हो गया है, लूट-खसोट का बोलबाला है, किस भारत और स्वराज्य की कल्पना की थी हमने और कैसा समाज आज हमारे सामने है..... क्रान्तिकारी तो अब पक्के आम की तरह गिर रहे हैं, एक समय आएंगा जब लोग उनके बलिदान को भूल जाऐंगे। 14 अक्तूबर, 1999 को रात्रि नौ बजे इस वीरांगना का 92 वर्ष की आयु में गाजियाबाद में देहान्त हो गया। वे यहां लगभग 20 बर्षों से राजनगर के सैक्टर 2 में अपने पुत्र शचीन्द्र वोहरा के यहां रह रही थीं। मृत्यु के समय उनका पुत्र, पुत्रवधु तथा एक पौत्र और दो पोतियां मौजूद थीं। दुर्गा भाभी आज भले ही हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं मगर उनका बलिदान, तप और त्याग देशवासियों को सदा-सर्वदा प्रेरणा देता रहेगा।

–महादेव, सुन्दरनगर - 174 401 (हि.प्र.)

thearyasamaj.org

लघुकथा –

समर्थ को नहीं दोष

–श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'

– मिस्टर राकेश ! सुबह तुम्हें दो-तीन पत्र दिये थे, उन पत्रों में एक पत्र इंजन से संबंधित था, जो मुख्यालय से आया था। वह लेकर आओ। अधिकारी महोदय ने राकेश को बुला कर कहा।

अधिकारी महोदय का आदेश सुनकर राकेश दो-तीन घंटों तक वह पत्र ढूंढता रहा लेकिन उसे वह पत्र नहीं मिला।

अधिकारी महोदय ने राकेश को बुला कर पुनः पूंछा--क्या हुआ मिस्टर राकेश ?

साहब ढूँढ रहा हूँ........मिल नहीं रहा है। राकेश ने डरते हुए कहा।

--जाओ जल्दी ढूँढ कर लाओ। अधिकारी महोदय थोड़ा गरज कर बोले।

काफी देर बाद अधिकारी महोदय ने फिर राकेश को बुलवाया। अब तो राकेश की हिम्मत ही नहीं हो रही थी, क्योंकि वह पत्र राकेश को कहीं भी नहीं मिल रहा था। राकेश मन ही मन सोच रहा था कि वह अधिकारी महोदय को क्या जवाब देगा।

जब अधिकारी महोदय का पुनः बुलावा आया तो वह हिम्मत करके अधिकारी महोदय के कक्ष में डरते-डरते प्रवेश कर गया। वह देखता है कि वह पत्र तो अधिकारी महोदय के हाथ में है।...... साब यह पत्र आपके पास......। वह बस इतना ही बोल पाया।

– हां मिस्टर राकेश! यह पत्र मेरे कागजों में ही दबा रह गया था। इसे फाइल में लगा लेना। अधिकारी महोदय ने पत्र राकेश को थमाते हुए कहा।

राकेश अब मन ही मन सोच रहा था--साब, अब आपको कौन कहने वाला। पत्र को थामते हुए वह सोचता ही रह गया--समर्थ को नहीं दोष............?

– उत्साही प्रकाशन, 76-ए, कैलाश नगर, गली नं. 16, झोटवाडा, जयपुर-302012

thearyasamaj.org

वाल्मीकिरामायण में भरतचरित्र

– कु. विदुषा

आर्यावर्त इस भारतवर्ष के प्राणभूत ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण का माहात्म्य लोक में भगवान् भास्कर की प्रतिष्ठा के समान सहज प्रमाणित है, जिसे कथ्य की अपेक्षा नहीं। महत् सच्चरित्रों के आकार इस ग्रन्थ में निःस्वार्थ प्रेम और उदात्त मानवीय भावनाओं के चित्र पग–पग पर दृष्टिगोचर होते हैं। सच्चरित्रों की इस सरणि में सर्वथा स्वार्थरहित समर्पण और मानवता की पराकाष्ठा का एक श्रेष्ठ उदाहरण है, काव्यनायक श्रीराम के अनुज भरत। रामायण के उदात्तचरित्रों में सच्चारित्र्य का जो चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है, उसके संधारण में महात्मा भरत का चरित्र अद्वितीय है। महर्षि वाल्मीकि ने राम आदि चारों भ्राताओं के जन्म–बालक्रीडा–गुरुकुलाध्ययन–प्रभृति अवसरों पर उनके चरित्र का परिचय सुन्दर संस्कृत के आदि–ग्रन्थ में कराया है।[1]

उस चरित्र की प्रबल सक्रियता उस अवसर पर परिलक्षित होती है, जब भरतमाता कैकेयी ने भरत के लिए राजसिंहासन और परम्परानुसार राज्य के उत्तराधिकारी राम के लिए सिंहासन के स्थान पर वनवास माँगा है। इस बात का ज्ञान भरत को तब होता है, जब रामवियोग से पीडित दशरथ के प्राण त्याग देने पर वशिष्ठ के सन्देश पर ननिहाल से लौटे भरत माता कैकेयी से अयोध्या की श्रीहीन अवस्था का कारण पूछते हैं। पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार भरत को मर्मान्तक पीडादायी है उस पर श्रीराम–लक्ष्मण–सीता के वन जाने का समाचार ऐसा है, मानो किसी ने उनके घाव पर नमक लगा दिया हो। महाराज दशरथ से अन्यायपूर्ण अनुचित माँग करने वाली अपनी ही जननी महारानी कैकेयी की वे भयङ्कर भर्त्सना करते हैं।[2]

श्रुत्वा च स पितुर्वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ।
भरतो दुःखसंतप्तः इदं वचनमब्रवीत्।।

भरत का कथन है कि यदि श्रीराम का तुममें मातृवत् स्नेह न रहा होता तो अवश्य मैं तुम्हारा परित्याग कर देता। रघुवंशियों के कुल की परम्परागत रीति को मैं मिटने नहीं दूँगा और तदनुसार राम ही राज्य के वास्तविक अधिकारी हैं।

इस प्रकार अनेक मर्मभेदी वचनों से इस भीषण अनुचित कर्म की गर्हा करते हुए कैकेयी से कहते हैं, कि तुम्हारी इस कुटिल इच्छा को मैं कदापि पूर्ण होने नहीं दूँगा।[3]

1. वाल्मीकिरामायण, (वा.रा.,) बाल. 18, 25 ; 33-36
2. वही, अयोध्या का. 73, 1-4;17-18; 20; 26
3. वा.रा. अयोध्या., 73, 17, 26

thearyasamaj.org

जैसे अग्नि में तपाए जाने पर सोने की परीक्षा होती है, वैसे ही विपत्ति में पड़ने पर ही मनुष्य के गुणों की वास्तविक परख होती है। यहाँ भरत पर ऐसा ही जटिल अवसर उपस्थित है। कोई सामान्य व्यक्ति होता तो विशाल निष्कण्टक राज्य को पाकर हर्ष से गद्गद् हो जाता परन्तु भरत अनधिकृत राज्य को कुटिल षड्यन्त्र द्वारा हस्तगत करने वाली माता की भयङ्कर भर्त्सना करते हुए उसे माँ कहना भी स्वीकार नहीं करते हैं। तात्कालिक परिस्थिति को देखते हुए वे सर्वप्रथम पिता के पार्थिव शरीर का समुचित अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न कर पुत्रोचित दायित्व का निर्वाह करते हैं। एतदनंतर गुरुजन और मन्त्री राजाविहीन अयोध्या का राजसिंहासन स्वीकारने का प्रस्ताव भरत के समक्ष रखते हैं।[4]

तब भरत का स्पष्ट उत्तर है कि-राम हो या भरत महर्षि वशिष्ठ के ही ये दोनों शिष्य हैं। गुरु अपने दोनों शिष्यों की कर्तव्यनिष्ठा और समर्पण की भावना से भली-भाँति परिचित हैं, उन्हें विदित है कि राम अपने पिता का वचन किसी भी प्रकार मिथ्या होने नहीं देंगे तथापि भरत द्वारा राम को वापस लौटा लाने की आज्ञा माँगने पर वे भरत की इच्छा का सम्मान करते हैं। राम को वनवास भेजने के हठ पर अड़ी हुई कैकेयी से महर्षि वशिष्ठ ने पहले ही सावधान किया था कि तुमने जो भरत के लिए राज्य तथा राम को वनवास मांगा है। भरत कदापि इस राज्य को स्वीकार नहीं करेंगे।[5]

भरत को वन में श्रीराम के पास जाने की आज्ञा देने में भी उनका मन्तव्य यही है कि आज तक संसार ने राज्यलिप्सार्थ होने वाले अनेक युद्ध देखे हैं, परन्तु राज्य देने के निमित्त होने वाला यह अभूतपूर्व युद्ध भरत के वन गए बिना ही यह जगत् कैसे देख पाएगा ?

चित्रकूट गमन के समय मार्ग में गङ्गातट पर श्रीराम के प्रति भरत के सद्भावपूर्ण मन्तव्य को जानकर निषादराज गुह उनके साथ चल देते हैं। महर्षि भरद्वाज के आश्रम पहुँचने पर भरत से उनका राज्यलिप्सा सम्बन्धी प्रश्न भरत के लिए मर्म विदीर्ण कर देने वाला है। इस पर उनका प्रत्युत्तर है कि यदि आप जैसे तपस्वी मेरे आचरण पर सन्देह करें तो यह किसी सामान्य व्यक्ति के कहे की अपेक्षा अधिक कष्टकारी है। फिर भरद्वाज से ही चित्रकूट में श्रीराम के निवास की बात जानकर तथा मार्ग पूछकर वे वहाँ से विदा लेकर आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मण ध्वज देखकर अयोध्या की चतुरङ्गिणी सेना को पहचानते हैं जिससे उनके मन में सन्देह उत्पन्न होता है कि भरत को राज्य पाकर सत्ता का मद हो गया है और वह हम लोगों को वन में ही समाप्त करके अयोध्या में निष्कण्टक राज्य करना चाहता है। लक्ष्मण की इस शङ्का पर राम उसे समझाते हैं कि भरत जैसे उदारचेता मनस्वी को राजसत्ता का मद विचलित नहीं कर सकता। वह अवश्य ही हमारे वियोग से व्याकुल हो हमें लौटा लाने हेतु आया होगा।[6]

4. वा.रा.,आयोध्या, 82. 7-8 5. वही, 37. 30-32 6. वही, 90. 15

thearyasamaj.org

श्रीराम के आश्रम के मार्ग को विविध चिन्हों से पहचानते हुए भरत जब वहाँ पहुँचकर अग्रज को वन्य पशुओं के मध्य देखते हैं तो अत्यधिक व्याकुलता से आर्त हो उनकी ओर दौड़ते हैं[7] वे व्याकुल होते हैं, अपने आंसुओं को रोक नहीं पाते, वे अपने जीवन को धिक्कारते हैं कि मेरे कारण श्रीराम को इतना कष्ट भोगना पड़ा वे रोते हुए श्रीराम के चरणों में गिर पड़ते हैं। उनके साथ ही शत्रुघ्न भी श्रीराम जी के चरणों में प्रणाम करते है।[8]

भरत को हृदय से लगाकर श्रीराम द्वारा राजधर्मनिरूपणपूर्वक कुशल समाचार पूछते हैं तथा भरत पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं।[9]

भरत से राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर व्यथित हुए राम पिता को जलाञ्जलि देकर भरत के साथ आए गुरु तथा माताओं सहित सभी का सत्कार करते हैं फिर सभी की उपस्थिति में ही भरत पुन: पुन: श्रीराम से अयोध्या चलने हेतु विनम्र अनुरोध करते हैं कि मेरी माता को अभीष्ट वर देने के लिए यह जो आपका राज्य मुझे प्रदान किया गया था आपकी यह वस्तु मैं आप ही को समर्पित करता हूँ। इस राज्य का पालन करने में आप ही समर्थ हैं। अत: वापस चलकर अयोध्या को सनाथ करें। राम को अयोध्या भेजने के लिए वे स्वयं उनके स्थान पर चौदह वर्ष का वनवास काटने को उद्यत हैं परन्तु पिता के वचन पालन के प्रति राम की दृढ़ता को देखकर अपने प्रियभ्राता राम की प्रसन्नता और उन्हीं की इच्छा को सर्वोपरि मानकर अन्तत: भरत को श्रीराम को वापस लिए बिना ही लौटना पड़ता है परन्तु भरत अपने अग्रज के द्वार से रीते हाथ नहीं लौटे। भरत जो राज्य श्रीराम को देने आए थे उन्होंने उसे स्वीकार कर चौदह वर्ष तक भरत के पास धरोहर रूप में स्थापित करके उसके पालन और उसकी व्यवस्था का भार सौंपा। अग्रज के धर्मयुक्त आदेश और उपदेश को शिरोधार्य कर भरत ने उस दायित्व को स्वीकार करके श्रीराम से यह प्रार्थना की कि यदि आप बताये हुए समय पर अयोध्या नहीं आयेंगे तो मैं अपने शरीर को अग्नि से भस्म कर दूँगा। श्रीराम भरत की बात मान लेते हैं और ठीक समय पर लौटने के लिए उन्हें आश्वस्त करते हैं।[10]

ऐसे समय में जब रघुवंश की उज्ज्वल गाथा जो एक हीनकर्म से अपबाधित हो रही थी तब उसकी कीर्तिपताका को पुन: फहराकर, भाई के प्रति भाई के प्रेम का चरमोत्कर्ष बताकर, धर्म और सदाचार के लिए सर्वस्व बलिदान का आदर्श स्थापित कर और मानवता के आँचल में गरिमा भरकर यशस्वी दशरथपुत्र भरत अग्रज की चरणपादुका अपने मस्तक पर धारण कर अनमने से अयोध्या लौटे। भरत के इस अनुपम भ्रातृप्रेम और सदाचरण को देखकर महर्षि भरद्वाज गद्गद् होकर कहने को विवश हो गए कि-

नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदां वरम्।
यदार्यं त्वयि तिष्ठेत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम्।।[11]

तदुपरान्त श्रीराम के वनवास के कष्टों का स्वयं अनुभव करने के लिए उन्हीं के समान तपस्वी वेष बनाकर नन्दिग्राम में आश्रम बनाकर फल-मूल पर निर्वाह करते हुए श्रीराम की चरणपादुका को राजचिन्ह बना अयोध्या की शासन-व्यवस्था को भली-भाँति सतर्क रहकर चलाते रहे। श्रीराम के वनवास से लौटने पर

7. वा.रा. अधोध्या, 97. 9-15
8. वही, 100. 36-40
9. वही, 102. 1-3
10. वही, 112. 20-27
11. वही, 113. 17-16

thearyasamaj.org

उनका राज्य पुनः उन्हीं को समर्पित करते हुए भरत स्वयं को भारमुक्त अनुभव करते हैं।[12]

महाराज श्रीराम के सिंहासनारूढ होने पर भरत सर्वदा उनकी आज्ञा के आधीन रहकर राजकार्यों के समुचित निर्वाह में उनके सहयोगी रहे। इस प्रकार भरत के इस भावुक और कर्तव्यपरायण रूप के साथ ही उनके महान् पराक्रम का भी चित्र वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध है। सिन्धु नदी के तट पर गन्धर्वों को परास्त करके भरत ने तक्षशिला और पुष्कलावती नाम के दो नगर स्थापित किए। जिनमें श्रीराम की आज्ञानुसार भरतपुत्र तक्ष तथा पुष्कल का अभिषेक किया।[13]

एतदनन्तर चन्द्रकान्ता नगरी में लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु को अभिषिक्त कर वहाँ की शासन-व्यवस्था को भली-भाँति स्थापित करने के निमित्त एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वहीं निवास कर पुनः अयोध्या लौटे। वहाँ पर पूर्ववत् प्रजा की सेवा करते हुए दीर्घकाल तक रहे।[14]

महात्मा भरत के चरित्र पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि वे गुणवान्, सदाचारी और धर्मपरायण महात्मा हैं। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है ज्येष्ठभ्राता श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम। महारानी कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से अनीतिपूर्वक हस्तगत किया गया राज्य यदि भरत ने स्वीकार कर लिया होता तो न्याय-नीति-धर्म तथा निज कर्तव्य के प्रति समर्पण और उदात्त भ्रातृप्रेम का समुज्ज्वल आदर्श कहाँ देखने को मिलता ? वनवास की अवधि के पश्चात् अयोध्या लौटने पर भी स्वाभिमानी राम भरत द्वारा भोगे गए अपने अधिकृत राज्य को कदापि स्वीकार नहीं करते।[15] तब रामराज्य का आदर्श और प्रजाहित में सर्वस्व बलिदान का चरमोत्कर्ष कहाँ मिल पाता ? तब सहज स्नेहपूर्ण हृदय भी निश्चय ही कलुषित हो जाते और सच्चरित्रों के चरमोत्कर्ष की सरणि जो वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगोचर होती है अवश्य धूमिल हो जाती। रामायण नामक आदिकाव्य रूपी समुद्र में सच्चारित्र्य के जो दिव्यरत्न भरे हैं उनकी कान्ति वैसी भासमान नहीं हो पाती जिस रूप में उसे आज हम देखते हैं। भरत की इसी महानता के समक्ष नतमस्तक को गोस्वामी तुलसीदास कह उठे-

"भरत सरिस को राम सनेही।
जग जपु राम राम जपु जेहि।।"

भरत का यह निःस्वार्थ उदात्त चरित्र प्रत्येक काल में मानवमात्र को यह आभास कराने वाला है कि अपने कर्तव्य को दायित्वपूर्वक निभाने वाला अधिकार पाने का स्वतः अधिकारी हो ही जाता है। अतः निःस्वार्थ कर्तव्यभावना ही मानवता की उच्चतम पराकाष्ठा है, जिसे इशोपनिषद् का ऋषि स्पष्ट करता है-

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।"[16]

- संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।

---

12. वा.रा., 127. 54-57
13. वही, 101. 7-11
14. वा. रा. उत्तर, 102. 14-17
15. वा. रा. अयोध्या. 61. 15-16
16. ईशोपनिषद्, 2

thearyasamaj.org

स्वामी दयानन्द एक विद्वान् के रूप में

– ठाकुर मनोहर लाल

प्राचीनकाल से भारत ऋषि–मुनियों तथा वेदों की धरती रही है। सँसार के दूसरे देशों से विद्वान् ज्ञानप्राप्ति के लिये यहाँ आते थे। ब्रह्मा से जैमिनी तक के सन्तों ने अपने दैवीज्ञान से इस धरती को पवित्र बनाया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती इन सन्तों की मण्डली में से एक थे। स्वामी दयानन्द जी ने प्राचीनकाल से चल रही शिक्षाप्रणाली के स्थान पर विदेशियों द्वारा भारत में चलाई गई शिक्षा का विरोध किया। क्योंकि इसमें अनेक दोष थे। इसलिये उन्होंने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने नए विचार दिए।

स्वामी दयानन्द जी ने प्राचीन गुरुकुलपद्धति के आधार पर शिक्षा प्राप्त की थी। यह शिक्षा–पद्धति ब्रह्मचर्य के नियमों पर आधारित थी। इसीलिए उनका प्रथम प्रयास शिक्षा तथा विद्यार्थियों में प्राचीन उज्ज्वल शिक्षा को लाना था। उनके शिक्षादर्शन में वेदों को प्रथम स्थान दिया गया था। वे वेदों के ज्ञान से इतना प्रभावित हुये कि उन्होंने एक बार कहा था– "वेदों के आन्तरिक तत्त्व को समझो वे आपके जीवन की ज्ञान की प्यास को दूर करेंगे"।

स्वामी दयानन्द का विचार था कि आधुनिक शिक्षाप्रणाली ने भारतीयों का सभी कुछ समाप्त कर दिया है। भारतीय अपना सभी कुछ भूलते जा रहे हैं। उनमें भारतीय शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति धीरे धीरे समाप्त हो रही है। स्वामी जी का विचार था कि बच्चों के लिए सबसे बड़ा प्यार का उपहार कीमती कपड़े या सोने के आभूषण नहीं अपितु सत्शिक्षा है। जो कि नैतिक तथा व्यावहारिक जीवन का रास्ता दिखाती है। (सत्या. पृ. 26–27; 150–215 संस्करण 1875)।

स्वामी दयानन्द के अनुसार देश के राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में यह देखे कि माँ–बाप बच्चे को स्कूल भेजते हैं या नहीं। राजा का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में लड़के तथा लड़कियों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस सम्बन्ध में राजा की आज्ञा का पालन न करने वाले को सजा दी जाए। राज्य का यह नियम होना चाहिए कि कोई भी माता–पिता अपने पुत्र या पुत्री को आठ वर्ष की आयु के बाद घर न रखे।

सत्यार्थप्रकाश में दिए गये शिक्षा के ढाँचे के अनुसार बच्चे को प्रथम पाँच वर्ष तक माता के शिक्षण के अधीन रहना पड़ता है। माता को उसके चरित्र तथा ठीक आदतों का निर्माण करना चाहिए। माँ को बच्चे की बोलने की कुशलता पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जब बच्चा ठीक ढंग से बोलने लगे तो माँ को बच्चे के उच्चारण की ओर विशेष ध्यान देने के साथ उसको मातृभाषा का भी ज्ञान कराना चाहिए। पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे को संस्कृत के वर्णों तथा विदेशी भाषा के वर्णों की

thearyasamaj.org

शिक्षा देनी चाहिए ताकि इस आयु तक बच्चा मातृभाषा, संस्कृत-भाषा तथा विदेशी भाषा में पूर्ण दक्ष हो जाए। माता-पिता का यह कर्तव्य है कि जब उनका लड़का या लड़की आठ वर्ष के हों तो उन्हें अलग अलग स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दें। उनका मानना था कि लड़कों को 24 वर्ष तक तथा लड़कियों को 16 वर्ष तक शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए।

अध्यापक और बच्चों के सम्बन्ध घनिष्ट होने चाहिएं। सभी बच्चों का खाने, पीने, पहनने तथा बैठने का ढंग समान होना चाहिए चाहे वह राजकुमार, राजकुमारी या निर्धन हो। इस ढंग से वह जातिप्रथा को समाप्त करना चाहते थे। वे अध्यापकों को विद्यार्थियों की शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक अन्नति का जिम्मेदार समझते थे। स्वामी दयानन्द के अनुसार अध्यापक को अपने शिष्यों को इस तरह से प्रेरणा देनी चाहिए, "मेरे बच्चो सदा सत्य बोलो, पवित्र जीवन व्यतीत करो, कामवासना से दूर रहो, कभी पढ़ने और पढ़ाने से जी मत चुराओ, अपने आपको तब तक भौतिक तथा आध्यात्मिक विज्ञान में लगा रखो जब तक कि आप इसमें पूर्ण दक्षता नहीं प्राप्त कर लेते, उसके बाद आप अपनी आवश्यकताओं की ओर ध्यान दो। तब जाओ और शादी करो, धर्म तथा सच्चाई से कभी मत गिरो, कभी भी धन तथा शक्ति के पीछे मत पड़ो।"

अध्यापकों के गुणों के विषय में स्वामी जी लिखते हैं कि "अच्छा अध्यापक वह है जो कभी भी अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाता, न ही सुस्त रहता है, कभी सुख-दु:ख, लाभ-हानि, आदर-निरादर से प्रभावित नहीं होता और धर्म में सदा विश्वास रखता है।"

शिक्षा का क्या उद्देश्य हो ? इस विषय में उनका मत है कि बच्चे में आध्यात्मिक शक्ति का विकास करना है। घर में बच्चे को आध्यात्मिक ढंग से शिक्षा देनी चाहिए। उनके अपने शब्दों में, "पहली उपनयन रीति घर में ही होनी चाहिये, दूसरी स्कूल में! माता-पिता तथा अध्यापकों को बच्चे को गायत्री मन्त्र तथा उसके अर्थ को अच्छी तरह समझाना चाहिए। इस मन्त्र के समझने के बाद उन्हें भगवान् की उपासना के रास्ते समझाने चाहिए। जिसमें स्नान, आचमन तथा प्राणायाम की शिक्षा अवश्य हो।

स्वामी दयानन्द ने शिक्षा का दूसरा उद्देश्य आचरण का बढ़ावा माना है। उन्होंने विद्यार्थियों के आचरण पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार यह अध्यापकों पर आधारित है, कि वे विद्यार्थियों को बुरी आदतों से दूर रहने की शिक्षा दें। स्वामी जी ने बताया है कि विद्यार्थियों का आचरण पहले माँ की गोद में बनाया जाता है, और उसके पश्चात् अध्यापक द्वारा विद्यालय में बनाया जाता है। इस प्रकार घर और बाहर दोनों जगहों में उसका आचरण बनाया जा सकता है।

अन्त में स्वामी जी ज्ञान की प्राप्ति को शिक्षा का उद्देश्य समझते हैं। उनके अनुसार माता-पिता और अध्यापकों को बच्चों को यह पढ़ाना चाहिए कि शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़-लिख लेने के बाद दफतरों में ऊँची नौकरियां प्राप्त करना न हो। बल्कि जीवन की सफलता के लिए चारों तरफ की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना भी है।

thearyasamaj.org

स्वामी दयानन्द का विचार था शिक्षा के अधिकारी चारों वर्ण हैं न कि कोई विशेष वर्ण। उनके विचार में शिक्षा एक ऐसी वस्तु है जिस पर सभी का समान रूप से अधिकार है और वह उसको प्राप्त करने का अधिकारी है। इसी से राष्ट्र की उन्नति संभव है।

स्वामी दयानन्द न केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शुद्रों को शिक्षा देने के हक में थे बल्कि उनके विचार से स्त्रियों को भी उच्चकोटि की शिक्षा देनी चाहिए। जो कि स्त्री अध्यापकों द्वारा ही दी जाए। प्राचीनकाल की स्त्रियों के उदाहरण देकर वे स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रेरित करते थे। उनके शब्दों में, ''प्राचीन काल में स्त्रियाँ सेना और विज्ञान की शिक्षा से पूर्ण होती थीं, और वह अपने पतियों और सम्बन्धियों के साथ समय-2 पर युद्ध के मैदान में भी जाया करती थीं। जैसें कि कैकेयी ने अपने पति दशरथ का युद्ध में साथ दिया था। दयानन्द जी यह भी कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों की तरह मेडीकल विज्ञान, गणित और मैकेनिकल कला की शिक्षा प्राप्त करनी जरूरी है जो कि उनके वैवाहिक जीवन के लिए अति आवश्यक है। यदि पति पढ़ा लिखा हो और पत्नी अनपढ़ तो उनमें लगातार झगड़ा रहेगा। इसलिए उपरोक्त सभी विषयों की शिक्षा स्त्रियों के लिए आवश्यक है।

शिक्षा नीति-

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में प्राचीन शिक्षा को ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा कि अध्यापकों को व्याकरण, निघण्टु निरुक्त, वेदव्याख्या सहित उपवेद के साथ साथ भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता से सम्बन्धित ग्रन्थों को भी पढ़ाना चाहिए। शिक्षा की नीति के पश्चात् स्वामी जी शिक्षा वे माध्यम के विषय में लिखते हैं। वे हिन्दी की शिक्षा पर जोर नहीं देते, परन्तु हिन्दी को सभी विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं। वे अध्यापकों को प्रेरित करते हैं कि लड़के और लड़कियों को हिन्दी में शिक्षा देनी चाहिए। स्वामी दयानन्द उन विद्वानों में प्रमुख थे जिनका यह विचार था कि विदेशी भाषा हमारी शिक्षाप्रणाली कमी है। परन्तु उनका विचार था कि सर्वप्रथम बच्चे को मातृभाषा उसके पश्चात् हिन्दी और उसके पश्चात् विदेशी भाषा का ज्ञान देना जरूरी है। वे उन लोगों के विरुद्ध थे जिनका यह विश्वास था कि भारतीयों को सागर के पार नहीं जाना चाहिए। बल्कि वे यह कहते थे कि भारतीय छात्रों को उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिये दूसरे देशों में जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के सम्बन्ध में उपरोक्त विचार प्रकट ही नहीं किए परन्तु उन्होंने अपने जीवनकाल में इन विचारों को अपनाया भी। उन्होंने ना केवल झूठ और अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई ही की बल्कि इस अंधकार को समाप्त करने के लिए और शिक्षा का प्रसार करने के लिए विद्यालय खोले और उनमें दी गई शिक्षाप्रद शिक्षा के उपदेश और विचार अधिक लाभदायक सिद्ध हुए। उनकी मृत्यु के बाद उनके उपदेशों को उनके शिष्यों ने अपनाया और जगह-जगह डी.ए.वी. विद्यालय तथा गुरुकुल विद्यालय खोले गए। जो आज शिक्षा जगत् में बहुत ऊँचाईयों पर चल रहे हैं।

– 35, हिमक्रीत होस्टल, हि.प्र. विश्वविद्यालय, शिमला-5 ।

thearyasamaj.org

सर्वधर्म समभाव - सर्वजन हिताय

– श्री अमृतलाल मालवीय

पृथ्वी पर मानव-उत्पत्ति और विकास क्रमशः क्षेत्रवार / देशवार ही हुआ है। पृथक्-2 देशों / भूभागों में इसी क्रम से मानव-सभ्यता का भी विकास हुआ। कालान्तर में उस क्षेत्र / देश विशेष में एक पृथक् सँस्कृति का प्रार्दुभाव हुआ। यह संस्कृति उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप ही पैदा तथा विकसित हुई। जंगली क्षेत्रों में इसका विकास बहुत ही धीमा रहा। ये क्षेत्र सँस्कृति में आज भी पीछे रह गये हैं। इन संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के सहारे धर्मगुरुओं की पहिचान हुई जो सँस्कृति विशेष के विद्वान् रहे। यही मानव-सभ्यता और सँस्कृति उस क्षेत्र / देश का धर्म बनी। यद्यपि इस काल तक धर्मों का स्वरूप व्यापक नहीं था। धर्म मनुष्य का आचरण ही तो है जिसमें उसके जीवन जीने, खाने-पीने, रहन-सहन, चरित्र एवं आपस में व्यवहार करने जैसी सभी दैनिक क्रियायें समाहित रहती हैं/निर्धारित रहती हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही धर्म का भी विकास हुआ। प्रत्येक धर्म अपना वर्चस्व स्थापित करने/अपनी रक्षा करने हेतु एक-दूसरे पर दबाव बनाने लगे। यहाँ तक कि सत्ता के सहारे भी एक धर्म ने दूसरे धर्म पर आक्रमण किया। आज भी विश्व में ऐसे अनेकों देशों में धर्म के नाम पर सत्तायें गृहयुद्ध/युद्ध की ओर बढ़ रही हैं। अपने साम्राज्य विस्तार पर आमादा हैं। आखिर धर्म में ऐसी क्या बुराईं है जो एक-दूसरे से टकराता है/ जनसंहार कराता है/मानवता को रोंदता है।

आज विश्व के अनेकों क्षेत्रों तथा देशों में धर्म विस्तार और सम्पन्नता के नाम पर लड़ाई छिड़ी है। कहीं धार्मिक सत्ताओं का विरोध हो रहा है, तो कहीं धर्म आपस में टकरा रहे हैं और कहीं अपना वर्चस्व स्थापित करने हेतु जनआन्दोलन/विद्रोह हो रहे हैं जिनमें बेकसूर लाखों लोग मारे जा रहे हैं। इजराइल, ईराक, ईरान, मिश्र, लीबिया, सीरिया, पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि अरब देशों में इस प्रकार की जंग जारी है। भारत-पाकिस्तान के बीच भी दो-तीन युद्ध हो चुके हैं। इसमें भी धार्मिक कट्टरता ही मुख्य कारण माना जा रहा है भले ही इसके मध्य कश्मीर समस्या हो या और कुछ। इस्लामधर्म विस्तार में विश्वास करता है जबकि हिन्दुधर्म में ऐसा नहीं है। यदि होता तो हिन्दुस्तान के बंटवारे में पाकिस्तान और युद्ध में बंगला देश नहीं बनता। हिन्दुधर्म सहिष्णु है। सबको निबाहने वाला है पर क्या करे सामने वाला अपनी धार्मिक कट्टरता एवं आतंकवाद के वशीभूत आज भी युद्ध करने पर आमादा है। विश्व-संस्था राष्ट्रसंघ भी आज ऐसे युद्ध रोकने में नाकाम साबित हो रही है फिर इन धर्मयुद्धों में होने वाली मानवबलि के लिये कौन उत्तरदायी होगा? निश्चित ही धार्मिक कट्टरता इसके लिये उत्तरदायी है। अब समय आ गया है इन समस्त धर्मों के समन्वय का जब तक आपस में समन्वय स्थापित नहीं हो जाता विश्व में मानवता कराहती रहेगी जैसा कि पूर्व में लिखा गया है मौलिक रूप से कई क्षेत्र विशेष सीमा में विकसित हुआ है। इनमें अवश्य ही कुछ मानवीय संकीर्णतायें रह गई हैं। विसंगतियां रह गई हैं जिन्हें आज के परिप्रेक्ष्य में दूर

thearyasamaj.org

किया जाना मानवता के हित में अतिआवश्यक है। विश्व के सभी धर्मों के धर्मगुरु अपने सिंहासन एवं वैभव के मध्य यह भी सोचें कि जिस मनुष्य के लिये धर्मों की स्थापना की गई है, क्या इनसे मानव सुखी है? यदि नहीं तो तत्काल "सर्वधर्म समभाव-सर्वजनहिताय" की धारणा/मान्यता को साकार करने हेतु पुनः एक अन्ताराष्ट्रीय सर्वधर्म सम्मेलन बुलाया जाय। धर्म मनुष्य के द्वारा ही बनाये गये हैं ईश्वर के द्वारा नहीं। ईश्वर ने तो मनुष्य बनायें हैं। अतः इनमें परिवर्तन/ संशोधन मनुष्य के द्वारा ही किया जाता है। इसमें कोई बंधन नहीं है। अभी तक जो धर्म सम्मेलन हुये, संभवतः वे मात्र औपचारिक/ परिचयात्मक ही रहे। इनमें धार्मिक जनसंहार रोकने/युद्ध रोकने हेतु कोई ठोस प्रस्ताव पारित नहीं हुये। किन्तु अब समय आ गया है जबकि इन प्रस्तावों की स्वीकृति हेतु धर्मों के पुराने बनाये गये नियमों/आयतों में परिवर्तन/संशोधन कर, जिससे धार्मिक टकराव रोक कर सर्वधर्म समभाव-सर्वजन हिताय की भावना को साकार किया जा सके। जगद् गुरु स्वामी सत्यमित्रानंद जी गिरि द्वारा हरिद्वार में स्थापित भारतमाता मंदिर इसका ही एक उदाहरण/स्वरूप है जिसका अनुसरण कर कार्यक्रम आगे बढ़ाया जा सकता है। आज विश्व में ऐसे मानवधर्म की स्थापना की जरूरत है जिसमें ये सारे धर्म समाहित हो जावें। प्रक्रिया अवश्य ही कठिन एवं लम्बी है किन्तु संकल्प और प्रयास मानवता की रक्षा के लिये/भावी पीढ़ियों के लिये बहुत जरूरी है। मानवधर्म इन सभी धर्मों की संकीर्णताओं को लांघकर मानव- कल्याण करेगा ऐसा विश्वास है। आत स्वामी विवेंकानन्द क्यों प्रासंगिक हो रहे हैं? अब तक क्यों नहीं हुये? सोचने का विषय है। स्वामी जी ने शिकागो के अपने व्याख्यान से न केवल स्वयं को अपितु भारत के हिन्दूधर्म को भी प्रकाशित किया था। किन्तु इससे भी ऊपर उनकी सोच रही है। वे बहुत बड़े दार्शनिक भी थे। हिन्दूधर्म की कमियों/बुराइयों से भी वे परिचित थे। सभी धर्मों में कुछ न कुछ बुराईया/कमियां होती हैं। वास्तव में ये कमियाँ मूल धर्म की नहीं होतीं ये सभी विसंगतियां पैदा की जाती हैं तथा की जाती रही हैं।

सम्राट् अशोक और गौतमबुद्ध जैंसे महापुरुषों को भी आज तक हमने केवल प्रतीक मानकर ही पूजा है, उनकी शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास नहीं किया। आज सर्वधर्म-समभाव हेतु इनकी शिक्षा ग्रहण करना बहुत जरूरी है। मानवधर्म धार्मिक सीमाओं को लाँघता है जिनमें धर्म के नाम पर नरसंहार हो रहे हैं। मानवता रो रही है। यह समय धर्मों की आलोचना या सीमा लांघने का नहीं है अपितु मानवकल्याण कर विश्वशांति स्थापित करने का है। मानवधर्मी विश्व शासनव्यवस्था में अवश्य हो भौतिकवाद से उत्पन्न सभी बुराईयां तथा धार्मिक विसंगतियां समाप्त की जा सकती हैं। आज उस गंगा-जमुनी संस्कृति की याद आती है जब अविभाजित हिन्दुस्तान में सभी धर्मों के लोग आपस में मिल-जुल कर रहते थे। शादी-विवाह, मौत-मिट्टी में शामिल होते थे। मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों तथा गिरजाघरों में बेरोकटोक जाकर एक साथ प्रार्थना करते थे। क्या इतिहास की ये सब बातें झूठी हैं? क्या कभी किसी धर्म ने इन्हें ऐसा करने से रोका था? नहीं, तो फिर आज यह धार्मिक कट्टरता कहाँ से आ गई? हाँ यह हमने स्वयं ने पैदा की है धर्म ने नहीं। वस्तुतः धर्म एक मौलिक सोच/ अवधारणा है और यह अटल है। इसके विरुद्ध कार्य करना मानवीय अपराध है।

– टाइप-II/31, मालकम परिसर, CPWD, नवरतन बाग, इन्दौर (म.प्र.)

thearyasamaj.org

वेदोक्त आतंकवाद उन्मूलन के उपाय (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)

– श्री गुलशन शर्मा

लोकतान्त्रिक शासन आधुनिककाल में शासन का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप माना जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भारत की आजादी को 67 वर्ष बीत गए हैं, लेकिन इसकी स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले असंख्य स्वाधीनता सेनानियों ने स्वतन्त्र भारत का जो भव्य स्वरूप अपनी आँखों में संजोया था, वह सपना अभी पूरा नहीं हुआ है। आज हमारे देश के समक्ष अनेक चुनौतियां विद्यमान हैं, इनमें आतंकवाद, जनसंख्या-वृद्धि, भ्रष्टाचार, गरीबी, सामाजिक अन्याय, साम्प्रदायिकता, बेरोज़गारी, नक्सली संगठनों द्वारा की जाने वाली हिंसक घटनाएं, पड़ोसी देश के साथ सीमा संबन्धी विवाद आदि मुख्य हैं।

इन सभी समस्याओं में से यदि एक पर भी विचार किया जाय तो वह भी कम नहीं वह है आतंकवाद। आतंकवाद केवल भारत की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व की प्रमुख समस्या है। आपातकालीन मेघ के समान आतंकवाद कब कहां अपनी विनाश-लीला से विश्व में अशान्ति का वातावरण बना दे, यह कोई नहीं जानता है। आतंकवाद अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हिंसक एवं गैरकानूनी कृत्यों का आश्रय लेता है, जैसे हिंसक दंगे, बमविस्फोट, विमानों का अपहरण, राजनेताओं और बच्चों का अपहरण, अंताराष्ट्रीय सीमा पर घुसपैठ इत्यादि।

आतंकवाद को अंग्रेजी में "टैररिज्म" कहते हैं, जो लैटिनभाषा के "टैरर" शब्द से उत्पन्न हुआ है। कन्वेंशन ऑन प्रविंशेन एण्ड पनिशमेंट 1937 के अनुसार "आतंकवाद" का अभिप्राय उन कृत्यों से है जो किसी राज्य के विरुद्ध उन्मुख हों और जिनका उद्देश्य कुछ खास लोगों या सामान्य-जनमानस के मन में भय या आतंक पैदा करना हो"।[1]

आतंकवाद के विस्तार के अनेक कारण हैं, जैसे क्षेत्रवाद, भाषावाद,धर्मान्धता, आर्थिक विषमता, नैतिकमूल्यों एवं आचार के प्रमुख तत्त्वों का ह्रास, समानता का अभाव, दुर्बल न्याय-प्रणाली इत्यादि। उपर्युक्त कारणों में नैतिकमूल्यों एवं आचार के प्रमुख तत्त्व यथा सत्य, अंहिसा, मानवप्रेम, विश्वबन्धुत्व, एकता व समानता,

1. भारतीय शासन एवं राजनीति, डॉ. पुखराज जैन, डॉ. बी.एल. फडिया, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, सं. 2008, पृ. 718

thearyasamaj.org

शान्ति की कामना एवं लोककल्याण की भावना का न होना ही आंतकवाद की वृद्धि का प्रमुख कारण है। वस्तुतः सत्य, अहिंसा और मानव प्रेम इत्यादि की भावना ही मानव-समाज एवं मानवता की आधारशिला है। इसलिए यदि हम नैतिकमूल्यों के ह्रास को रोककर, भारतीय जनमानस में वेदोक्त आचार एवं नैतिकता के प्रमुख तत्त्वों की प्राणप्रतिष्ठा कर दें तो आतंकवाद को जड़ से खत्म किया जा सकता है। वैदिक संहिताओं में जहां अध्यात्म, समाजशास्त्र, विज्ञान आदि से संबन्धित अनेक विषयों का वर्णन मिलता है, वहीं आचार एवं नैतिकता के प्रमुख तत्त्वों का भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। जिनका विंवेचन इस प्रकार है :-

सत्य- सत्य को मानव-जीवन का सर्वश्रेष्ठ आचार सिद्धान्त माना गया है। वेदों में सत्य को महत्त्व देते हुए कहा गया कि सत्य के द्वारा ही भूमि स्तम्भित मानी गई है।[2] एक स्थान पर तो धरती एवं आकाश को भी सत्य बोलने वाला बताया गया है।[3] वेदों में सत्य को विश्व का मौलिक तत्त्व मानकर सत्य-वचन से रक्षा की कामना करते हुए कहा गया है कि जिस पर द्युलोक, दिन-रात तथा सारा जगत् आश्रित है, जिसकी महिमा से प्रतिदिन सूर्योदय होता है, और जल प्रवाहित होता है, ऐसा सत्य वचन हमारी रक्षा करे[4] तथा सत्य के आचरण से ही मानव स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है।[5] इस प्रकार वेदों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि सत्य ही मानव के नैतिक आचरण का आधारभूत सिद्धान्त है। इसलिए यदि भारतीय समाज में सत्य के महत्त्व को उजागर किया जाए तथा भारत का प्रत्येक नागरिक सत्य का आचरण करे तो आतंकवाद को किसी भी प्रकार का आश्रय नहीं मिलेगा, तथा आतंकवाद का विस्तार थम जाएगा।

अहिंसा- हिंसा का अर्थ है किसी मनुष्य, जीव, पक्षी इत्यादि को मन, वचन और कर्म से कष्ट न पहुंचाना। यही हिंसा आतंकवाद वृद्धि का सबसे बड़ा कारण है। वेदों में **''मा हिंसी''** कहकर हिंसा का निषेध तथा अहिंसा की स्थापना की गई है। वैदिक मन्त्रों में गौ के लिए **''अघ्न्या''** तथा यज्ञ के लिए **''अध्वर''** शब्द का प्रयोग हुआ है, वह अहिंसा की भावना का ही द्योतक है। इस प्रकार वेदों में अहिंसा के सिद्धान्त की दृढ स्थापना की गई है। आतंकवादियों का सम्पूर्ण कार्य हिंसा पर आधारित होता है। यदि आतंकवादी के मन में वेदोक्त अहिंसा की भावना व्याप्त हो जाए तो वे कभी भी हिंसक कृत्यों को नहीं करेगा। जिस से बहुत हद तक आतंकवाद खत्म हो जाएगा।

अभय- सभी प्रकार के भयों से रहित हो जाने को अभय कहते हैं। अभय एक प्रकार की मानसिक स्थिति है जिससे मनुष्य बिना किसी भय के लोक- कल्याण के कार्यों को करने के लिए प्रवृत्त हो जाता है। वेदों के मन्त्रों में भी अभय प्राप्ति के लिए बहुत-सी प्रार्थनाएं की गई हैं। जैसे मित्रों से अभय की प्राप्ति हो, शत्रुओं से भी कोई भय न हो। ज्ञात और अज्ञात दोनों ही प्रकार के शत्रु हमारे भय का कारण न बने। दिन-रात और सब दिशाएँ मुझे अभय प्रदान करती हुईं मित्र के समान हित करने

2. ऋग्वेद, 10. 85. 1 3. वही, 3. 54. 4 4. वही, 10.37. 2 5. वही, 5. 63. 1

thearyasamaj.org

वाली हों। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में भी अन्तरिक्ष, आकाश, पृथिवी और दिशाओं से अभय प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है।[6]

अभय की भावना से युक्त मनुष्य ही आतंकवाद का विरोध कर सकता है। इस लिए अगर विश्व के प्रत्येक नागरिक के हृदय में अभय की भावना जागृत हो जाए, तो प्रत्येक नागरिक आतंकवाद की गतिविधियों का विरोध करेगा।

विश्वबन्धुत्व की भावना- सम्पूर्ण विश्व के नागरिकों को अपना भाई, बन्धु एवं मित्र समझने की विचारधारा को विश्वबन्धुत्व कहते हैं। विश्वबन्धुत्व की इस भव्य भावना का मूल भी वेद ही है। वैदिक ऋषियों ने इस विशाल पृथिवी को ही बन्धु माना है।[7] यजुर्वेद में तो विश्व के समस्त प्राणियों को ही मित्रता की दृष्टि से देखने का संकल्प किया गया है।[8] वेदों में मित्र को छोड़ने वाले मनुष्य की निन्दा करते हुए कहा गया कि जो व्यक्ति मित्र को छोड़ देता है, उसकी वाणी से कोई फल नहीं होता है। वह जो कुछ सुनता है, व्यर्थ ही सुनता है, और वह सत्कर्म का मार्ग नहीं जान सकता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी सारी दिशाओं को अपना मित्र बनाने की भावना का अवलोकन होता है।[9] आतंकवाद को खत्म करने के लिए विश्वबन्धुत्व की भावना का होना भी अत्यावश्यक है।

लोक-कल्याण - यह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य तत्त्व है। किसी की रक्षा करने या किसी पर परोपकार करने को ही वस्तुतः लोककल्याण कहते हैं। हमारी वेदवाणी भी लोक-कल्याण के लिए ही आविर्भूत हुई है। ऋग्वेद में मानव एवं पशु इत्यादि सब प्राणियों के कल्याण की कामना की गई है।[10] इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में ऐसी बुद्धि एवं संपदा की याचना की गई है, जोकि विश्वकल्याण एवं सार्वजनिक हित का सम्पादन करने वाली हो।[11] यजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त में मन के कल्याणकारी होने की कामना व्यक्त की गई है।[12] वैदिक ऋषियों ने कल्याण के मार्ग का अनुसरण करने की भी प्रार्थना की है।

विश्व के प्रत्येक मानव में यदि मानवमात्र व समस्त समाज के प्रति कल्याण की भावना निहित हो जाए तो हिंसात्मक कार्यवाहियाँ करने से पहले आतंकवादी भी दूसरे का अकल्याण करने से भयभीत होगा।

पापराहित्य- मनुष्य पाप और पुण्य दो प्रकार के कर्म करता है। पुण्यकर्मों को श्रेष्ठ कर्म तथा पाप कर्मों को निषिद्ध कर्म कहा जाता है। ऋग्वेद में स्वयं को पाप कर्मों से दूर रखने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे पापदेवता! हमें पाप से दूर रखो। हमारे किए हुए पापों से हमें मुक्त करो।[13] भूत और भविष्य में किये पापों से बचाकर कल्याण की कामना का एक मन्त्र है कि हे देवो! अतीत और भविष्यत् के पापों से बचाकर हमारा कल्याण करो।[14] सम्पूर्ण विश्व में पापराहित्य हो

6. अथर्व., 19.15.5
7. ऋग्वेद, 1.164.33
8. यजु., 36.18
9. अथर्व., 19.15.6
10. ऋग्वेद, 7.54.1
11. वही, 3.57.6
12. यजु., 34.1-6
13. ऋग्वेद 1.24.9
14. वही, 10.63.8

thearyasamaj.org

जाने पर कोई भी मनुष्य हत्या, अपहरण, बम विस्फोट इत्यादि हिंसक कार्य नहीं कर सकता।

शान्ति की कामना- मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए शान्ति का होना परमावश्यक है। क्योंकि शान्तिरहित सुख कभी भी स्थायी नहीं रह सकता है। वेदों में भी शान्ति की कामना करते हुए वैदिक ऋषियों ने कहा कि **''द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव-शांन्तिः सा मा शान्तिरेधि।**[15]'' इसी प्रकार यदि सम्पूर्ण विश्व के नागरिक भी सर्वदा शान्ति की कामना करें तो कहीं भी अशान्ति का वातावरण नहीं हो सकता। यदि समाज में सर्वत्र शान्ति हो जाए तथा कोई भी मानव किसी को कष्ट पहुँचाने की चेष्टा न करे तो आतंकवाद पैदा ही नहीं हो सकता।

एकता व समानता- किसी भी राष्ट्र के सुदृढ़ एवं विकसित होने के लिए उस देश के नागरिकों में एकता एवं समानता की भावना का होना अनिवार्य है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में मन, वचन, एवं कर्म से एकता की भावना पर बल देते हुए मानव की मन्त्रणाओं, समितियों, विचारों, संकल्पों एवं अभिप्रायों में एकता व समानता लाने की प्रार्थनायें की गई हैं। इसी प्रकार एक और मन्त्र में कहा गया है कि मनुष्यों में न कोई बड़ा है, और न ही कोई छोटा है।[17] एकता और समानता का यह वैदिक आदर्श ही संसार को एक परिवार की भावना में बांधने का मङ्गलसूत्र है। अगर समाज में सर्वत्र एकता और समानता हो जाए तो एक मनुष्य के जो दूसरे मनुष्य के प्रति ईर्ष्या, द्वेषादि भाव हैं, वह नष्ट हो जाएँगे, तथा जाति और धर्म के नाम पर कोई भी आतंकी कार्यवाही नहीं होगी। कोई भी किसी को हीन दृष्टि से नहीं देखेगा।

अतः वैदिक साहित्य के पढ़ने से स्पष्ट ही है कि आतंकवाद का उन्मूलन वेदोक्त मन्त्रों में निहित है। यदि भारतीय समाज में सत्य, अहिंसा, अभय, विश्वबन्धुत्व इत्यादि नैतिक एवं आचार के सिद्धान्तों का अनुशीलन एवं दैनिक व्यवहार में आचरण किया जाय तो निश्चय ही आज का मानंव सफल जीवन-यापन करेगा और समाज, देश एवं विश्व से आतंकवाद का उन्मूलन करने में भी सक्षम होगा।

अतः में कहा जा सकता है कि यदि भारतीय गौरव को पुनः प्राप्त करना है और आतंकवाद को जड़ से समाप्त करना है तो हमें एक बार फिर से उपर्युक्त विशेषताओं से विभूषित वेदों की शरण में जाना होगा।

– वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड आई. एस. (पी.यू.), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

---

15. यजु., 36.17 16. ऋग्वेद 10.191.2;3 17. ऋग्वेद, 5.60.5

thearyasamaj.org

बुद्धचरितम् महाकाव्य का काव्यसौन्दर्य

– सुश्री प्रियंका विजय

संस्कृत-साहित्य में काव्य का विषय बहुत व्यापक है। खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पूकाव्य, ऐतिहासिककाव्य, कथाकाव्य, सुभाषित काव्य, गद्यकाव्य, नाटक आदि काव्य के ही पक्ष हैं। इनमें चरितकाव्य की परम्परा पुष्पदन्तकृत नागकुमार-चरित, यशोधरचरित, विक्रमकृत नेमिचरित, आचार्य शुभचंद्रकृत चन्द्रप्रभचरित, पद्मनाभ-चरित, जीवन्धरचरित, पद्मगुप्तकृत नवसाह-सांकचरित, मंखककृत श्रीकंठचरित आदि प्रमुख हैं। इसी चरितकाव्य-परम्परा में बुद्धचरितम् का स्थान भी प्रमुख है।[1] भगवान् बुद्ध के चरित को आधार बनाकर बुद्धचरित महाकाव्य अश्वघोष द्वारा प्रणीत है। इसके अतिरिक्त सौन्दरनन्द, शारिपुत्रप्रकरण, सूत्रालङ्कार, वज्रसूची उपनिषद्, गण्डी स्रोतगाथा, महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र। अश्वघोष की यह कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

महाकाव्य लक्षण- काव्यशास्त्र की परम्परा में प्राय: सभी आचार्यों ने महाकाव्य का लक्षण किया है। इनमें दण्डी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दण्डी ने काव्यादर्श में महाकाव्य का लक्षण करते हुए लिखा कि महाकाव्य का प्रारम्भ तीन प्रकार से होता है- आशी:, नमस्क्रिया व वस्तुनिर्देश। इतिहास की कथा पर आधारित होना अथवा इतिहास प्रसिद्धि को छोड़कर किसी सत्पुरुष की कथा का आश्रय लेना, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि महाकाव्य में अपेक्षित है। उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, चन्द्रास्त-सूर्यास्त, उद्यान विहार, जलक्रीड़ा, मधु-सेवन एवं संभोग का वर्णन होता है। विप्रलम्भ के बिना शृंगार की पुष्टि नहीं होती, अत: विप्रलम्भ श्रृंगार का भी वर्णन महाकाव्य में होता है। विवाह, कुमारजन्म, मन्त्र, दूत, प्रयाण और नायकाभ्युदय विषयों के वर्णन से युक्त होता है। सर्वत्र रस व भाव की सत्ता होती है। उसके सर्ग न बहुत बड़े होते हैं न छोटे। संधियों का समावेश भली-भाँति होता है। सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन होता है।[2]

उपर्युक्त दृष्टि से बुद्धचरितम् महाकाव्य की कोटि में आता है। इसमें 28 सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में बुद्धजन्म, द्वितीय सर्ग में अन्त:पुरविहार, तृतीय सर्ग में संवेगोत्पत्ति, चतुर्थ सर्ग में स्त्री-निवारण, पंचम सर्ग में अभिनिष्क्रमण के वृत्तान्त, षष्ठ एवं सप्तम सर्गों में छन्दक विसर्जन एवं तपोवन प्रवेश,

1 गैरोला वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. सं. ८८८-९३८

2. काव्यादर्श - 1/14-19

thearyasamaj.org

अष्टम सर्ग में बुद्ध-वियुक्त अन्तःपुर का करुण-क्रन्दन, नवम सर्ग में कुमार सिद्धार्थ के अन्वेषण का आयाम, दशम सर्ग में गौतम के मगध जाने पर बिम्बसारागमन का उल्लेख, एकादश सर्ग में कामनिन्दा, द्वादश सर्ग में बुद्ध का शान्ति प्रात्यर्थ महर्षि अराड-समीप अभिगमन, त्रयोदश सर्ग में तथागत का मार-विजय, चतुर्दश सर्ग में सिद्धार्थ की बुद्धत्वप्राप्ति, पंचदश में धर्मचक्र-प्रवर्तन, षोडश-सप्तदश सर्गों में बुद्ध के अनेक शिष्यों एवं महाशिष्यों का वर्णन तथा उनकी प्रव्रज्या का उल्लेख, अष्टादश सर्ग में अनाथ पिण्डद की दीक्षा का वर्णन, ऊनविंशति में पिता एवं पुत्र का समागम, एकविंशति, द्वाविंशति, त्रयोविंशति सर्गों में जेतवन स्वीकार, प्रव्रज्यास्रोत, आयुष्य-स्थिरीकरण, चतुर्विंशति में लिच्छवियों पर की गई अनुकम्पा, पंचविंशति सर्ग में बुद्ध का निर्वाण-मार्ग की ओर उन्मुखीकरण एवं षड्विंशति में महापरिनिर्वाण, सप्तविंशति में निर्वाण की संस्तुति, अष्टाविंशति में धातु विभाजन के विवेचन के साथ बुद्धचरितम् की समाप्ति हो जाती है।

पात्र-योजना- महाकाव्य के लक्षणानुसार बुद्धचरित महाकाव्य में पात्र-योजना की गई है। में पात्र-योजना के अन्तर्गत पुरुष-पात्र तथा स्त्री-पात्र सम्मिलित किये गये हैं। पुरुष-पात्र में सिद्धार्थ, शुद्धोधन, छन्दक हैं। इस महाकाव्य का नायक सिद्धार्थ है जो धीर प्रशान्त है सिद्धार्थ में धीर प्रशान्त के सभी लक्षण हैं।[3] जगत्-हित की भावना से प्रेरित उन्होंने जन्म लिया। दूसरे पात्र शुद्धोधन हैं जो सिद्धार्थ के पिता है। शुद्धोधन कपिलवस्तु के वीर पराक्रमी राजा हैं, जिनका राज्य विस्तृत एवं सुदृढ़ है।[4] तृतीय पुरुषपात्र छन्दक है जो सिद्धार्थ का विश्वासी स्वामिभक्त सारथि है।[5] कन्थक एक मूक जीव है। जो बोल नहीं सकता किन्तु संकेत मात्र से जैसे - हिनहिनाहट, अश्रुपात आदि या भूखा रहकर अपने दर्द को अभिव्यक्त करता है।[6] स्त्री-पात्र में यशोधरा, गौतमी प्रमुख हैं। यशोधरा सिद्धार्थ की पत्नी है।[7] बुद्धचरित की नायिका गौतमी राजकुमार सिद्धार्थ की विमाता है, जिसने मायादेवी के दिवंगत है जाने पर बुद्ध का पालन-पोषण किया।[8]

नगर वर्णन- कपिलवस्तु में स्थित भवनों के वर्णन से वहाँ की धन-सम्पन्नता एवं नगर-सौन्दर्य को प्रदर्शित किया गया है। कपिलवस्तु के भवन ऊँचे-ऊँचे हैं एवं उन भवनों के वातायनों से नीचे झाँकती हुई स्त्रियाँ ऐसी शोभित होती हैं मानों नीलकमल खिले हुए हैं। सुन्दर स्त्रियों से युक्त भवनों वाला वह नगर अप्सराओं से युक्त स्वर्ग-सा जान पड़ता है। कपिलवस्तु की सड़कें

3. सहित्यदर्पण, 3. 71
4. बुद्धचरितम्-1/52, 53, 55, 2/13, 15, 9/1,4,7
5. वही, 28/62-63, 6/7, 8, 35, 67, 8/32-35
6. वही, 6/31
7. वही, 2/26
8. वही, 8/52

thearyasamaj.org

लम्बी चौड़ी एवं स्वच्छ हैं। राजकर्मचारी राजमार्ग को सुन्दर ढंग से सजाते हैं। जब राजकुमार सिद्धार्थ यात्रा के लिए निकलते हैं तो राजमार्ग फूलमालाओं एवं पताकाओं द्वारा सजाया जाता है।[9]

आश्रम-सौन्दर्य - अश्वघोष ने आश्रम का वर्णन भी अत्यन्त सजीव ढंग से किया है। तपोवन में सिद्धार्थ के प्रवेश करते ही आश्रमवासियों की स्थिति का वर्णन बुद्धचरित के सातवें सर्ग में किया गया है।[10]

युद्ध-वर्णन - बुद्धचरित में युद्ध का बड़ा ही ओजस्वी चित्रण महाकवि ने किया है। मार सिद्धार्थ की तपस्या भंग करने के उद्देश्य से उसे चेतावनी देता है। यथा-

तत्क्षिप्रमुत्तिष्ठ लभस्व संज्ञां,
बाणो ह्ययं तिष्ठति लेलिहानः।
प्रियाविधेयेषु रतिप्रियेषु,
यश्चक्रवाकेष्विव नोत्सृजामि।।[11]

रस-योजना - बुद्धचरित में अंगीरस शान्तरस है। भरतमुनि के अनुसार 8 रसों को माना गया है[11] परन्तु मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने शांत रस को भी प्रधानता दी है। शान्तरस के विषय में आचार्य विश्वनाथ का विचार है कि- **शान्तः शमस्थायिभावः उत्तमप्रकृतिर्मतः**[13]। बुद्धचरित में यद्यपि शान्तरस के अनेक उदाहरण मिलते हैं किन्तु स्थालीपुलाकन्याय से यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है-

जगतश्च यदा ध्रुवो वियोगो,
ननु धर्माय वरं स्वयं वियोगः।
अवशं ननु विप्रयोजयेन्मांम,
कृतस्वार्थमतृप्तमेव मृत्युः।।[14]

इस पद्य में शम का स्थायीभाव निर्वेद है- विश्व से वियोग का निश्चित होना एवं धर्माचरण के लिए स्वयं ही पृथक् हो जाना। आलम्बन विभाव हैं- मृत्यु एवं आश्रम, सिद्धार्थ । मृत्यु के विषय में जानकर सिद्धार्थ के हृदय में स्थित निर्वेद स्थायीभाव उद्दीप्त हो गया है। सिद्धार्थ का तटस्थ होना, चिन्तित होना आदि संचारीभाव अनायास ही रसरूप में परिणत होते हैं। शान्तरस के साथ-साथ बुद्धचरित में करुण, वीर, शृंगारादि अन्य रसों का भी यथावसर वर्णन हुआ है।

अलंकार-योजना -

बुद्धचरित में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, एकावली, उदात्त, विशेषोक्ति, विभावना, संदेह, विषम, यमक, अनुप्रास आदि अर्थालंकार तथा शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दलंकार जैसे अनुप्रास बुद्धचरित में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग यत्र-तत्र किया गया है-

हंसेन हंसीमिव विप्रयुक्तां,
त्यक्तां गजेनेव वने करेणुम्।
आर्तां सनाथामपि नाथहीनां,
त्रातुं वधुमर्हसि दर्शनेन।।[15]

9. बुद्धचरित, 3. 9
10. वही, 7/4
11. वही, 13/13
12. नाट्यशास्त्र 6/16
13. साहित्यदर्पण 3/210
14. बुद्धचरितम् 5/38
15. वही, 9/27

thearyasamaj.org

इस श्लाक में 'ह', 'क्त', 'स' आदि वर्णों की बारम्बार आवृत्ति होने के कारण अनुप्रासालंकार की प्रतीति होती है।

यमक अलंकार- बुद्धचरित में यमक का उदाहरण निम्न प्रकार है-

भीष्मेण गङ्गोदरसंभवेन,
रामेण रामेण च भार्गवेण।
श्रुत्वा कृतं कर्म पितुः प्रियार्थं,
पितुस्त्वमप्यर्हसि कर्तुमिष्टम्।।[16]

यहाँ एक राम पद से दशरथ पुत्र तथा दूसरे राम पद से परशुराम अर्थ अभीष्ट है। अतः 'रामेण' शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में दो बार आवृत्ति होने के कारण यमक अलंकार है।

छन्द-योजना - बुद्धचरित में उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, रुचिरा, प्रहर्षिणी, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताग्रा, वसन्ततिलका इत्यादि अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है।

अनुष्टुप्- बुद्धचरित के छन्दक-विसर्जन नामक सर्ग का श्लोक में द्रष्टव्य है-

मुञ्च कन्थक मा वाष्पं दर्शितेयं सदश्वता।
मृष्यतां सफलः शीघ्रं श्रमस्तेऽयं भविष्यति।।[17]

यहाँ प्रत्येक चरण में आठ अक्षर हैं। जिनमें पँचवां अक्षर लघु तथा छटा अक्षर गुरु है। पहले और तीसरे चरण में सातवाँ अक्षर गुरु है, दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ अक्षर लघु।

भाषा-शैली-

बुद्धचरित की पदरचना मुख्यरूप से वैदर्भी रीति में उपनिबद्ध है। क्योंकि इसमें कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है। कवि ने युद्ध-वर्णन, सेना-वर्णन आदि जटिल समस्याओं के प्रसंग में समासयुक्त शैली का प्रयोग किया है।[18] महाकवि ने अपनी कृति में सरस व लोककल्याण के निमित्त सूक्तिशैली का प्रयोग किया है, जिससे लोक-व्यवहार की सच्चाई का ज्ञान होता है।

सुखं हि धर्मस्य वदन्ति मूलम्[19]

उपसंहार- महाकवि अश्वघोष की कृति बुद्धचरित एक ऐसा ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें शाक्यकुलीन राजकुमार सिद्धार्थ की सम्पूर्ण जीवनचर्या का चित्रण हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में कवि का मुख्य उद्देश्य तथागत के अमरसंदेश को जन-जन तक संप्रेषित करना है, न कि अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करना। इस महाकाव्य के अध्ययन से तत्कालीन परिस्थितियों तथा राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक जीवन की यथावत् जानकारी प्राप्त होती है। अतः काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित मानदण्ड पर यह पूर्णरूपेण महाकाव्य सिद्ध होता है।

- शोधछात्रा (संस्कृत विभाग), वनस्थली विद्यापीठ, (राजस्थान)।

16. बुद्धचरित, 9/25   17. वही, 6/55   18. वही, 19/17   19. वही, 7/18

thearyasamaj.org

संस्थान समाचार

दान-

श्री डी.पी. वासुदेवा,
6, कूल रोड़, जालन्धर 250/-

डॉ. एस. एल. चावला,
चावला चिल्ड्रन हस्पताल,
शहीद ऊधम सिंह नगर, जालन्धर 2000/-

मै. कैलाश चन्द वीरेन्द्र कुमार सूद
खानपुरी गेट, होशियारपुर 1100/-

श्रीमती सरिता वैश,
401, अमरनाथ टावरी वरसोवा,
अन्धेरी, मुम्बई 5000/-

डॉ. अशोक सूद,
कोतवाली बाजार, होशियारपुर 2000/-

लै. कर्नल वी. वी. मनोचा (रिटा.),
सी-79, एन. डी. एस. डी, पार्ट-II
साऊथ एक्स्टैंशन, नई दिल्ली 5000/-

डॉ. भागेन्द्र सिंह ठाकुर,
जोगिन्द्र नगर, मण्डी (हि.प्र.) 500/-

ग्रुप कै. श्री चन्द्रशेखर शर्मा (रिटा.)
337, सैक्टर-9, अम्बाला। 2000/-

मै. श्रेयांस इन्डस्ट्री,
अहमदगढ़,जिला, संगरूर (पं.) 5000/-

श्री सतपाल चोपड़ा,
541, मोहल्ला गढ़ी, बहादुरपुर,
होश्यारपुर 500/-

श्रीमती स्नेह जैन,
सनशाईन कम्पोनैंट, प्रा.लि.,
17-डी, फोकल प्वांईट,
फगवाड़ा रोड, होशियारपुर 11000/-

श्रीमती सन्तोष हसीजा,
पत्नी श्री सचिदानन्द हसीजा,
ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली। 1000/-

डा. एस. के. रिहानी,
कोठी न. 1617, सैक्टर 44-बी,
चण्डीगढ़। 5000/-

श्री चन्द्रमोहन अरोड़ा,
योग साधना आश्रम, होशियारपुर। 2100/-
योग साधना आश्रम, 3-L
माडल टाऊन, होशियारपुर 3100/-

श्री प्यारेलाल गुप्ता,
ऐ-903, गार्डन इस्टेट,
लक्ष्मी नगर, लिंक रोड़,
गोरेगांव वैस्ट, मुम्बई 1100/-

श्री वी. एम. भल्ला,
3367, सैक्टर 27-डी,
चन्डीगढ़ 7000/-

श्री आशीश भाटिया,
24, राजेन्द्र पार्क, नई दिल्ली 5000/-

डा. एस. के. ऐरी,
114, रमर स्ट्रीट, मार्टन, यू.एस.ए। $101/-

डॉ. एम. आर. लाम्बा,
लाम्बा नर्सिंग होम, धर्मपुर,
सोलन (हि. प्र.) 2500/-

श्री ओमप्रकाश आनन्द,
ई.जे. 339/1, शिवाजी पार्क,
रिआजपुर, जालन्धर। 1000/-

श्रीमती श्यामा सूद,
पत्नी स्व. श्री मनोहरलाल सूद,
विद्यानिकेतन, जोधामल रोड़,
होशियारपुर। 2100/-

thearyasamaj.org

हवन-यज्ञ-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्यदिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

फरवरी, 2015 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का संकीर्तन भी नियमित रूप से किया गया।

बधाई -

राज्यसभा सदस्य आदरणीय श्री अविनाशराय खन्ना जी की सुपुत्री आयुष्मती कैप्टन शिखा का शुभ विवाह आयुष्मान् डां. कपिल के साथ 31-1-2015 को होशियारपुर में बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर श्री खन्ना जी ने समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करते हुए नगर के गणमान्य किसी भी अभ्यागत से शगुन के रूप में या उपहार के रूप में कुछ भी भेंट स्वीकार नहीं की। केवल नवविवाहित बच्चों के लिए आशीर्वाद और शुभकामना की ही कामना की। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से इस आदर्श विवाह पर श्री खन्ना जी और उनके समस्त परिवार को बहुत-बहुत बधाई एवं शुभकामना।

पंजाब विश्वविद्यालय रिजनल कैम्पस के डिप्टी लाईब्रेरियन डॉ. सतीशचन्द्र जी की सुपुत्री आयु. तनुभा का शुभ विवाह दिनांक 8-2-2015 को चण्डीगढ़ में संपन्न हुआ तथा संस्थान के कर्मिष्ठ श्री किशोरचन्द की सुपुत्री आयु. दीपिका का शुभ विवाह आयु. राहुल के साथ दिनांक 10-2-2015 को होशियारपुर में संपन्न हुआ। संस्थान के कर्मिष्ठवर्ग की ओर से दोनों परिवारों को बहुत-बहुत बधाई।

शोक समाचार-

अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जा रहा है कि संस्थान के आजीवन सदस्य श्री राजेश ठाकुर (सुपुत्र ठाकुर कुशलसिंह जी, अम्बर होटल) का दिनांक 13-2-2015 को अचानक हृदयगति रुक जाने से 51 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। स्वर्गीय राजेश ठाकुर एक धार्मिक स्वभाव, मिलनसार, परोपकारी तथा सामाजिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इस संस्थान से आपका बहुत लगाव था। समय-समय पर वे यथाशक्ति से आश्रम को सहायता प्रदान करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उनके जाने से उनके परिवार को जितना दुःख हुआ है उतना ही इस संस्थान तथा अन्य व्यक्तियों को भी इससे अत्यन्त दुःख हुआ है।

इस शोक के अवसर पर शोकसंतप्त परिवार के प्रति संस्थान के कर्मिष्ठवर्ग की ओर से हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है तथा परमपिता परमात्मा से दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करने तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जा रहा है कि संस्थान की कैन्टीन के ठेकेदार श्री मोहनलाल जी की माता का 95 वर्ष की आयु में ऊना (हिमाचल) में देहान्त हो गया।

इस शोक के अवसर पर शोकसंतप्त परिवार के प्रति संस्थान के कर्मिष्ठवर्ग की ओर से हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है। परमपिता परमात्मा से दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करने तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

thearyasamaj.org

विविध समाचार

आर्यसमाज कलकत्ता का १२९वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न –

आर्य जाति का सुयश अक्षय हो, आर्यध्वजा की अविचल जय हो।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो, आर्य बनावें वसुधा सारी।।

आर्यसमाज कलकत्ता का १२९वाँ वार्षिकोत्सव शनिवार २० दिसम्बर से २८ दिसम्बर, २०१४ पर्यन्त आम्हर्स्ट स्ट्रीट अवस्थित हृषीकेश पार्क में हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव में प. बंगाल प्रान्त के अतिरिक्त झारखण्ड, बिहार, उत्तरप्रदेश एवं नेपाल से भी सैकड़ों जन उपस्थित हुए। **आमन्त्रित विद्वत्गण**- आचार्य डॉ. धर्मवीर जी (अजमेर), श्री कुलदीप विद्यार्थी (बिजनौर)।

इस कार्यक्रम में अथर्ववेद पारायण यज्ञ, ध्वजोत्तोलन, शोभायात्रा, बालक सत्संग, आर्य कन्या विद्यालय का कार्यक्रम, स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, महिला सम्मेलन, राष्ट्र-रक्षा सम्मेलन, वेद सम्मेलन, सायंकालीन अधिवेशन, बंगभाषा कार्यक्रम, ऋषि लंगर, शंका समाधान, धन्यवाद ज्ञापन आदि विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। अन्त में शान्तिपाठ के साथ वार्षिकोत्सव का समापन हुआ।

श्री सत्यप्रकाश जायसवाल (मन्त्री)

प्रथम दशाब्दी वार्षिकोत्सव एवं महर्षि दयानन्द प्रवेशद्वार का भव्य उद्घाटन समारोह (1 मार्च 2015, रविवार, प्रात: 8 बजे से सायं 5 बजे तक) –

वेद और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के निमित्त महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस ज्ञानज्योति को प्रज्वलित किया था, उसे भारत के दक्षिण भाग में भी विस्तृत करने के महान् उद्देश्य से 'निगम-नीडम्-वेदगुरुकुलम् की स्थापना अप्रैल 3, 2004 में की गई थी। ईश्वरानुग्रह से एवं दानी महानुभावों के सत्सहयोग से स्वल्पावधि में ही यह गुरुकुल अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में पूर्ण सफल रहा है। अब इस गुरुकुल में 1 मार्च 2015, रविवार के दिन 'ऋग्वेद - पारायणयज्ञ की पूर्णहुति' के साथ 'प्रथम दशाब्दी समारोह' मनाया जा रहा है। इस पावन अवसर पर 'महर्षि दयानन्द प्रवेशद्वार' का उद्घाटन तथा ''स्मारिका'' का विमोचन समारोह 'पूज्य श्री स्वामी आर्यवेश जी' (प्रधान, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली) के करकमलों से सम्पन्न किया जा रहा है साथ में कुछ ग्रन्थरत्नों का विमोचन भी किया जायेगा।

निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम् महर्षि दयानन्द मार्ग, पिड़िचेड, मेदक (तेलंगाणा)-502278

thearyasamaj.org

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति॥

सुभाषित भाण्डागार, 108.6

इस संसार में केवल अपने ही पालन-पोषण के लिए कौन जीवित नहीं रहता, अर्थात् सभी अपने लिए ही जीवित हैं। वस्तुतः जीना उसका सार्थक है, जो दूसरों के लिए जिया है, अर्थात् परोपकार ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है।

स्व. श्री रघुवरदयाल जी कपिला

तथा

स्व. श्री रामशरणदास जी

[निधनः 22-12-1988]

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती रामप्यारी जी

की

पावनस्मृति

में

उनके बच्चों की ओर से

प्रयोजक :

डॉ. बी. के. कपिला [पुत्र] एवं **श्रीमती राकेश कपिला** [पुत्रवधू]

सुतैहरी रोड़, होश्यारपुर [पंजाब]

thearyasamaj.org

नानुप्तं रोहते सस्यं तद्वद् दानफलं विदुः।
यद्यद् ददाति पुरुषः तत् तत् प्राप्नोति केवलम्॥

महा. अनु. प. 11

यह सभी जानते हैं कि जब तक खेत में अन्न का बीज नहीं बोया जायेगा, तब तक उसमें न घास पैदा होगा न अन्न। इसी प्रकार जब तक कोई अपने हाथों से दान नहीं करेगा तब तक उसे अच्छा फल मिलने वाला नहीं। अतः मनुष्य जिस प्रकार से और जिस भावना से दान करता है उसे उसी प्रकार उसका फल मिलता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ :

प्रोमिला-इन्द्रजीत तलवाड़

(रिटायर्ड प्रिंसीपलज़)

57, कस्तूरबा नगर,
जालन्धर छावनी

thearyasamaj.org

नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेत् श्रियं रक्षेत् च मत्सरात्।
विद्यां मानापमानाभ्याम् आत्मानं तु प्रमादतः ॥

महा. शान्ति प. 329.11

मनुष्य अपने जीवन में तप की क्रोध से रक्षा करे, अर्थात् तप पर क्रोध का प्रभाव न पड़ने दें। इसी प्रकार लक्ष्मी पर ईर्ष्या का मान-अपमान का विद्या पर और अपने पर आलस्य का प्रभाव कदापि न पड़ने दे, क्योंकि इन वस्तुओं के प्रभाव से वस्तुएं नष्ट हो जाती है।

अपने पूज्य पिता

स्व. श्री गंगाराम जी बीर

(जिनका निधन 20-10-1977 को हुआ)

तथा

पूज्या माता

स्व. श्रीमती सुशीला देवी जी बीर

(जिनका निधन 14-5-1989 को हुआ)

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री एम. पी. बीर (पुत्र)

18-सी, विजय नगर, दिल्ली-110 009

thearyasamaj.org

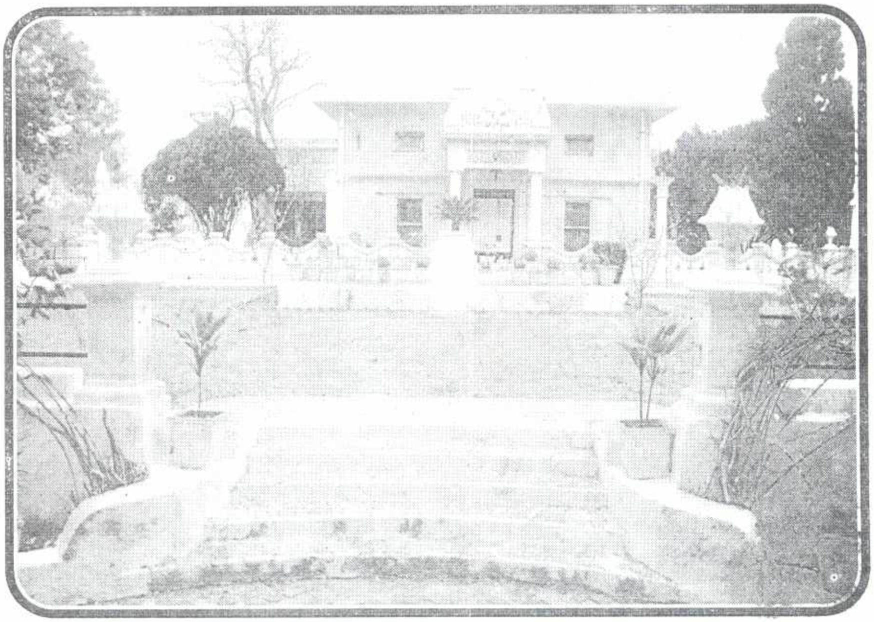

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-२-२०१५ को प्रकाशित।